प्रभावशाली अहिंसक चिकित्सा पद्धतियाँ भाग-1

स्वकथन

चिकित्सा पद्धतियों को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम तो बिना दवा वाली स्वावलंबी चिकित्सा पद्धतियाँ तथा दूसरी दवाओं के माध्यम से उपचार वाली परावलंबी चिकित्सा पद्धतियाँ। स्वावलंबी चिकित्सा पद्धतियों में स्वयं का उपचार स्वयं द्वारा किया जाता है। उसमें उपचार हेतु दवा अथवा चिकित्सकों पर पूर्णतया निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं होती। मात्र अपने आसपास के वातावरण में सहजता से उपलब्ध साधनों का बिना किसी को कष्ट पहुचाएँ सहयोग लिया जा सकता है। ऐसा उपचार करते समय आवश्यक होता है कि रोगी स्वयं की क्षमताओं के प्रति सजग हो, रोग के मूल कारणों को समझ उनसे बचने हेतु आवश्यक जीवन शैली का सम्यक् आचरण करे। रोग में स्वयं की भूमिका का सही चिन्तन हो तथा ऐसे उपचार की उपेक्षा करे जो शरीर की प्रतिरोधक क्षमता कम करते हों, दुष्प्रभाव पैदा कर भविष्य में अधिक परेशानी पैदा करते हों, उपचार रोग के कारणों को दूर किए बिना मात्र राहत दिलाते हों, उपचार हेतु हिंसा, क्रूरता, निर्दयता को प्रत्यक्ष-परोक्ष प्रोत्साहन देते हों, जिससे मन और आत्मा के विकार बढ़ते हों।

दुनिया में जब दो व्यक्ति एक जैसे नहीं हो सकते हैं, तब दो रोगी शत-प्रतिशत एक जैसे कैसे हो सकते हैं?प्रत्येक रोगी का खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार, चिन्तन-मनन, आसपास का वातावरण एवं परिस्थितियाँ अलग-अलग होने से उसके रोग का परिवार अलग-अलग होता हैं। अच्छे से अच्छे डॉक्टर और दवा का प्रभाव बाह्य रूप से एक जैसा लगने वाले दो रोगियों का एक जैसा कैसे हो सकता है, जो सभी चिन्तनशील प्राणियों के लिए चिन्तन का विषय है? स्वावलंबी चिकित्सा में व्यक्ति का स्वविवेक जागृत रहने से उपचार से पड़ने वाले सूक्ष्मतम प्रभाव की अनुभूति होती है। इसी कारण स्वावलंबी चिकित्सा अधिक मौलिक, अधिक वैज्ञानिक और अधिक प्रभावशाली होती है क्योंकि उसमें पूर्ण शरीर के साथ-साथ मन और आत्मा को एक ईकाई के रूप में मानकर उपचार किया जाता है।

उपचार करते समय परावलंबन चाहे दवा का हो या डॉक्टर का, उपकरणों का हो अथवा विविध यांत्रिक परीक्षणों का, परावलम्बन तो पराधीन ही बनाता है। अतः जबतक दूसरा कोई प्रभावशाली विकल्प हों, पराधीनता से यथा संभव बचना ही श्रेयस्कर होता है।

स्वावलंबी चिकित्सा पद्धतियाँ क्यों प्रभावशाली?

बिना दवा उपचार की स्वावलंबी चिकित्सा पद्धतियाँ, सहज, सरल, सस्ती, स्थायी, दुष्प्रभावों से रहित, शरीर की प्रतिकारात्मक क्षमता को बढ़ाने वाली होती हैं। जो व्यक्ति का स्वविवेक जागृत कर, स्वयं की क्षमताओं के सदुपयोग की प्रेरणा देती है। रोग के लक्षणों की अपेक्षा रोग के मूल कारणों को नष्ट करती हैं जो शरीर के साथ-साथ मन एवं आत्मा के विकारों को दूर करने में सक्षम होती हैं। जो जितना महत्त्वपूर्ण होता है। उसको उसकी क्षमता के अनुरूप महत्त्व एवं प्राथमिकता देती हैं। यह प्रकृति के सनातन सिद्धान्तों पर आधारित होने के कारण अधिक प्रभावशाली, वैज्ञानिक, मौलिक एवं निर्दोष होती हैं।

क्या शरीर विज्ञान की विस्तृत जानकारी आवश्यक है?

हम साल के 365 दिनों में अपने घरों में बिजली के तकनीशियन को प्रायः 8 से 10 बार से अधिक नहीं बुलाते। 355 दिन जैसे स्वीच चालू करने की कला जानने वाला बिजली के उपकरणों का उपयोग आसानी से कर

सकता है। उसे यह जानने की आवश्यकता नहीं होती कि बिजली का आविष्कार किसने, कब और कहाँ किया? बिजलीघर से बिजली कैसे आती है? कितना वोल्टेज, करेन्ट और फ्रिक्वेन्सी है? मात्र स्विच चालू करने की कला जानने वाला उपलब्ध बिजली का उपयोग कर सकता है। विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों की ऐसी साधारण जानकारी से व्यक्ति न केवल स्वयं अपने आपको स्वस्थ रख सकता है, अपितु असाध्य से असाध्य रोगों का बिना किसी दुष्प्रभाव प्रभावशाली ढंग से उपचार भी कर सकता है। ऐसी ही चन्द प्रभावशाली चिकित्सा पद्धतियों की सामान्य सैद्धान्तिक जानकारी का संकलन है पुस्तक ''प्रभावशाली अहिंसक चिकित्सा पद्धतियाँ''। विस्तृत जानकारी के लिए लेखक की पुस्तक ''आरोग्य आपका'' एवं अन्य पुस्तकें पढ़े।

सभी का मंगल हो, सभी का कल्याण हो, सभी सुखी एवं शांत हों, इसी मंगल भावना के साथ.....।

डॉ. चंचलमल चोरडिया

एक्युप्रेशर चिकित्सा

विश्वसनीय निदान की सरलतम पद्धति एक्युप्रेशर

शरीर के सूक्ष्म से सूक्ष्म भाग का संबंध पूरे शरीर से होता है। इसी कारण जब शरीर के किसी भाग में तीव्र पीड़ा होती है अथवा कष्ट होता है तो, हमें कुछ भी अच्छा नहीं लगता। शरीर में प्रत्येक अंग, उपांग, अवयव, अन्तःश्रावी ग्रंथियों आदि से संबंधित कुछ महत्त्वपूर्ण प्रतिवेदन बिन्दु हमारी हथेली और पगथली में होते हैं। जिस प्रकार किसी भवन की बिजली का सारा नियन्त्रण मुख्य स्विच बोर्ड से होता है। ठीक उसी प्रकार ये प्रतिवेदन बिन्दु शरीर के किसी न किसी भाग का प्रतिनिधित्व करते हैं।

जिस प्रकार कोई व्यक्ति किसी का पिता, किसी का भाई, किसी का पति तो अन्य किसी का दादा, नाना, पुत्र, चाचा, मामा, मित्र आदि भी हो सकता है। यदि किसी व्यक्ति का फोटों अलग-अलग स्थानों से लिया जायें तो एक ही व्यक्ति के फोटों में अन्तर हो सकता है। ठीक उसी प्रकार से ये प्रतिवेदन बिन्दु भी शरीर के अलग-अलग भागों से संबंधित हो सकते हैं। यानी एक ही प्रतिवेदन बिन्दु के शरीर में अनेक संबंध हो सकते हैं।

सुजोक और रिफ्लेक्सोलॉजी एक्युप्रेशर के सिद्धान्तानुसार हथेली और पगथली में दबाव देने पर जिन स्थानों पर दर्द होता है, उसका मतलब उन स्थानों पर विकार अथवा अनावश्यक विजातीय तत्त्वों का जमाव हो जाना होता है। परिणाम स्वरूप शरीर में प्राण ऊर्जा के प्रवाह में अवरोध हो जाता है। ये प्रतिवेदन बिन्दु बिजली के पंखों, बल्ब या अन्य उपकरणों के स्विच की भांति शरीर के अलग-अलग भागों से संबंधित होते हैं। जिस प्रकार स्विच में खराबी होने से उपकरण तक बिजली का प्रवाह सही ढंग से नहीं पहुँचता, ठीक उसी प्रकार इन प्रतिवेदन बिन्दुओं पर विजातीय तत्त्वों के जमा होने से संबंधित अंग, उपांग, अवयवों आदि में प्राण ऊर्जा के प्रवाह में अवरोध हो जाने से व्यक्ति रोगी बनने लगता है।

एक्युप्रेशर द्वारा रोग निदान का सिद्धान्त-

हथेली और पगथली में आगे पीछे सूक्ष्म से सूक्ष्म भाग में अर्थात पूरी हथेली और पगथली के पूरे क्षेत्रफल में अंगुलियों या अंगूठे से हम सहनीय गहरा दबाव देने पर जहाँ-जहाँ जैसा-जैसा दर्द आता है, वे सारे दर्द वाले प्रतिवेदन बिन्दु एक्युप्रेशर के सिद्धान्तानुसार रोग से संबंधित होते हैं। अर्थात् वे शरीर में रोग के परिवार के सदस्य होते हैं।

एक्युप्रेशर द्वारा निदान क्यों विश्वसनीय ?

1. प्रत्येक व्यक्ति की हथेली और पगथली उसके स्वयं की होती है। अतः इस विधि द्वारा उस व्यक्ति का स्वयं से संबंधित शरीर के सभी रोगों का निदान होता है। जबकि लक्षणों पर आधारित निदान पूर्ण शरीर का नहीं हो सकता। किसी भी दो हृदय रोगियों, मधुमेह के रोगियों अथवा और किसी नाम से पुकारे जाने वाले रोगियों के रोग का परिवार कभी भी पूर्ण रूप से एक सा नहीं हो सकता। अतः लक्षणों एवं यंत्रों पर आधारित रोग का निदान करते समय सहयोगी रोगों की उपेक्षा होना स्वाभाविक है। परन्तु एक्युप्रेशर पद्धति द्वारा जितना सही और विश्वसनीय निदान होता है, अन्यत्र प्रायः संभव नहीं होता।
2. कभी-कभी रोग के कारण कुछ और होते हैं और उसके लक्षण कहीं दूसरे अंगों पर प्रकट होते हैं। जैसे मधुमेह का कारण पाचन तंत्र का बिगड़ना भी हो सकता है, न कि पेन्क्रियाज का खराब होना। हृदय शूल का कारण छोटी आंत में बनी गैस का प्रभाव भी हो सकता है, न कि हृदय की कमजोरी का होना। अस्थमा का कारण बड़ी आंत का बराबर कार्य न करना, न कि फेफड़ों का खराब होना। जब निदान ही अधूरा होता है तो उपचार कैसे स्थायी एवं प्रभावशाली हो सकता है ? आधुनिक चिकित्सक ऐसे रोगों को प्रायः असाध्य बतला देते हैं। परन्तु हथेली और पगथली के समस्त प्रतिवेदन बिन्दुओं पर दबाव देने से जहाँ ज्यादा दर्द आता है, वे ही रोग का मुख्य कारण होते हैं, भले ही रोग के लक्षण कहीं अन्य भाग में प्रकट क्यों न हों ?इसी कारण एक्युप्रेशर असाध्य रोगों के निदान की प्रभावशाली चिकित्सा पद्धति होती है।
3. रोग की प्रारम्भिक अवस्था में ही इस विधि द्वारा निदान संभव होता है। जहाँ-जहाँ पर दबाव देने से दर्द आता है, वे सभी प्रतिवेदन बिन्दु भविष्य में शरीर में रोग की स्थिति बनाते हैं। यदि रोग हो गया हों तो वे उसके कारण होते हैं, परन्तु यदि रोग के लक्षण प्रत्यक्ष बाह्य रूप से प्रकट न हुयें हों तो, भविष्य में होने वाले रोगों का कारण उन्हीं प्रतिवेदन बिन्दुओं में से होता है। रोग आने से पूर्व उसकी प्रारम्भिक अवस्था का निदान जितना सरल इस पद्धति द्वारा होता है, उतना प्रायः अन्यत्र कठिन होता है।
4. शरीर में रोग कभी अकेला आ ही नहीं सकता। जिन लक्षणों के आधार पर आज रोगों का नाम करण किया जाता है, वे वास्तव में रोगों के नेता होते हैं, जिन्हें सैकड़ों अप्रत्यक्ष रोगों का समर्थन और सहयोग प्राप्त होता है। परन्तु इस विधि द्वारा रोगों के पूरे परिवार का निदान होने से निदान सही और विश्वसनीय होता हैं, जो अन्य चिकित्सा पद्धतियों में प्रायः संभव नहीं होता।
5. हथेली और पगथली में दबाव देने पर जितने कम प्रतिवेदन बिन्दुओं पर अथवा जितना कम दर्द आता है, उतना ही व्यक्ति स्वस्थ होता है। जितने ज्यादा दर्द वाले प्रतिवेदन बिन्दु उतना पुराना रोग और स्वास्थ्य खराब होता है। इस प्रकार इस निदान पद्धति द्वारा जो रोग आधुनिक पेथालोजिकल टेस्टों अथवा यंत्रों की पकड़ में नहीं आते, उन रोगों के कारणों का सरलता पूर्वक निदान किया जा सकता है। उपर्युक्त निदान अधिक सही और विश्वसनीय होता है। अतः उस निदान पर आधारित उपचार-प्रभावशाली, दुष्प्रभावों से रहित और अल्पकालीन होता है, जिस पर किसी को भी आंशका नहीं होनी चाहियें।

निदान बिल्कुल सरल, सस्ता, सहज, पूर्ण अहिंसक, दुष्प्रभावों से रहित, स्वावलम्बी, सर्वत्र अपने साथ उपलब्ध होता है। शरीर विज्ञान के विशेष ज्ञान की आवश्यकता नहीं होने से सभी व्यक्ति स्वयं भी आत्मविश्वास के साथ उपचार कर सकते हैं। पूरे शरीर का निदान होने से शरीर के साथ-साथ, मन और वाणी के विकारों का भी, निदान करने वाला एवं अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का सरलतम निदान इस पद्धति द्वारा होता है।

निदान में मूल सिद्धान्तों की उपेक्षा अनुचित-

आजकल हम आधुनिक चिकित्सा पद्धति के निदान से इतने अधिक प्रभावित होते हैं कि जब तक उनके द्वारा रोग प्रमाणित नहीं हो जाता, तब तक हम रोग को रोग ही नहीं मानते। अधिकांश एक्युप्रेशर चिकित्सक भी प्रायः उन्हीं रोगों से संबंधित प्रमुख प्रतिवेदन बिन्दुओं पर उपचार कर रोगी को राहत पहुँचाने तक ही अपने आपको सीमित रखते हैं। सुजोक और रिफ्लोक्सोलोजी के चित्रों में बतलाये गये प्रमुख बिन्दुओं में दर्द की स्थिति देख अधिकांश एक्युप्रेशर चिकित्सक भी कभी-कभी रोग के नाम से निदान करते संकोच नहीं करते। जैसे किसी व्यक्ति के हृदय के प्रमुख प्रतिवेदन बिन्दु पर दबाव देने से दर्द आने की स्थिति में उसे हृदय का रोगी कह देते हैं। परन्तु ऐसा सदैव सही नहीं होता। हृदय में रोग होने पर निश्चित रूप से हृदय के प्रमुख प्रतिवेदन बिन्दु पर दबाने से दर्द आता है। परन्तु इसका विपरीत कथन कभी-कभी गलत भी हो सकता है, क्योंकि उस प्रतिवेदन बिन्दु का शरीर के अन्य भागों से भी कुछ न कुछ संबंध अवश्य होता है। जैसे किसी व्यक्ति के पिता की मृत्यु होने पर पुत्र रोता है। इस कारण पुत्र को किसी अन्य कारण से रोते हुये देख यह कहना कि क्या आपके पिताजी की मृत्यु हो गयी है ? कहाँ तक तर्क संगत है ? अतः एक्युप्रेशर की इस पद्धति में आधुनिक चिकित्सा द्वारा कथित रोगों के नाम से निदान करना उसके मूल सिद्धान्तों के विपरीत होता है। निदानकर्त्ता मात्र इतना कह सकता है कि, दर्द वाले प्रतिवेदन बिन्दु, शरीर में उपस्थित रोग का प्रतिनिधित्व करते हैं, भले ही वे किसी भी नाम से क्यों न पुकारे जाते हों ?

एक्युप्रेशर द्वारा उपचार की विधि-

हथेली और पगथली के सभी भागों में दर्द वाले प्रतिवेदन बिन्दुओं का पता लगाने के पश्चात्, प्रत्येक दर्द वाले प्रतिवेदन बिन्दु पर दिन में एक या दो बार बीस से तीस सैकण्ड तक, सभी प्रतिवेदन बिन्दुओं पर जमा हुये विजातीय पदार्थों को दूर करने हेतु, अपनी अंगुलियों और अंगूठे से सहनीय घुमावदार दबाव देने से, धीरे-धीरे विजातीय तत्त्व वहाँ से दूर होने लगते हैं। परिणाम स्वरूप शरीर के संबंधित रोग ग्रस्त भागों में प्राण ऊर्जा का प्रवाह नियमित और संतुलित होने लगता है तथा रोगी रोग मुक्त होने लगता है, तथा प्रत्यक्ष रोग न भी हो तो भविष्य में रोग होने की सम्भावनाएँ नहीं रहती है।

उपचार यथा संभव साधक को स्वयं ही करना चाहिये। स्वयं द्वारा निदान और उपचार करने से व्यक्ति सभी दर्दस्थ प्रतिवेदन बिन्दुओं पर समान दबाव दे सकता है और रोग में जैसे-जैसे राहत मिलती जाती है, उसका आत्म विश्वास और सजगता बढ़ती जाती है। दूसरा व्यक्ति प्रायः सभी दर्दस्थ बिन्दुओं पर दबाव नहीं देता। अतः यथा संभव जितना उपचार रोगी स्वयं कर सकें, उतना तो कम से कम उसको स्वयं ही करना चाहिये, अन्य साधक तथा चिकित्सक का रोग से संबंधित प्रमुख प्रतिवेदन बिन्दुओं के दबाव हेतु शीध्र राहत मिलने तक ही सहयोग लेना चाहिए। क्योंकि अधिकांश चिकित्सक भी एक्युप्रेशर सिद्धान्तों के अनुसार न तो रोगों का पूर्ण निदान ही करते हैं और न उपचार। आधुनिक चिकित्सा के निदान को आधार मानकर ही प्रायः नामधारी रोगों के प्रमुख प्रतिवेदन बिन्दुओं का उपचार करते हैं। सहयोगी रोगों की उपेक्षा करने से उनका उपचार कभी-कभी आंशिक और अस्थायी भी होता है एवं अधिक समय ले सकता है।

परन्तु आजकल हम नामधारी रोग को सीधा नियन्त्रण में करने का प्रयास करते हैं, जो न्यायोचित नहीं होता। सहयोगियों को दूर किये बिना जिस प्रकार नेता पर नियन्त्रण करना कठिन होता है। प्रायः हम अखबारों में पढ़ते हैं और टी.वी. पर देखते हैं कि प्रदर्शनों के समय प्रदर्शनकारियों के नेता को पुलिस सीधा कैद नहीं करती। पहले प्रदर्शन कारियों को प्रार्थना कर शान्त करने का प्रयास करती है, फिर लाठी चलाती है, अश्रु गैस छोड़ती हैं

और जब सारी भीड़ चली जाती है तो नेता को आसानी से कैद किया जा सकता है। ठीक उसी प्रकार रोग के परिवार के सहायक रोगों से संबंधित सभी प्रतिवेदन बिन्दुओं का उपचार करने से मुख्य रोग की ताकत स्वतः समाप्त हो जाती है तथा वह शीघ्र नियन्त्रण में लाया जा सकता है। जिस प्रकार जनतंत्र में सहयोगियों का समर्थन न मिलने से नेता की ताकत समाप्त हो जाती है, नेता को पद त्याग करना पड़ता है। ठीक उसी प्रकार अप्रत्यक्ष सहयोगी रोगों के दूर हो जाने से मुख्य रोग से शीघ्र एवं स्थायी मुक्ति मिल जाती है। यही एक्युप्रेशर चिकित्सा का मूल सिद्धान्त है।

उपसंहार-

स्वास्थ्य विज्ञान जैसे विस्तृत विषय को सम्पूर्ण रूप से अभिव्यक्त करना बड़ा कठिन है। फिर भी हिंसा द्वारा निर्मित दवाओं का उपयोग न लेने का संकल्प करने वाले प्रत्येक साधक को एक्युप्रेशर, सुजोक, शिवाम्बु, स्वर, स्फटिक, नाभि,खिंचाव, रेकी, मुद्राओं, प्राणिक-हिलींग, दूरस्थ, डाउजिंग, पिरामीड, सूर्य किरण, रंग एवं चुम्बक जैसी बिना दवा उपचार एवं स्वास्थ्य सुरक्षा की स्वावलंबी, प्रभावशाली, अहिंसात्मक, निर्दोष, दुष्प्रभावों से रहित चिकित्सा पद्धतियों की साधारण सैद्धान्तिक जानकारी अवश्य रखनी चाहिए ताकि वे स्वावलंबी बन समाधि में रह सके।

चुम्बक चिकित्सा

संतुलन ही स्वास्थ्य का मूलाधार है :-

रोगों की रोकथाम के लिये आवश्यक है कि शरीर में जमें अनावश्यक तत्त्वों को बाहर निकाला जावे एवं शरीर के सभी अंग उपांगों को संतुलित रख शारीरिक क्रियाओं को नियंत्रित रखा जाये। जो अधिक सक्रिय हैं, उन्हें शान्त किया जावे तथा जो असक्रिय हैं, उन्हें सक्रिय किया जावे। चुम्बक का उपचार इन सभी कार्यो में प्रभावशाली होता है। शरीर में चुम्बकीय ऊर्जा का असंतुलन एवं कमी अनेक रोगों का मुख्य कारण होती है। यदि इस असंतुलन को दूर कर अन्य माध्यम से पुनः चुम्बकीय ऊर्जा उपलब्ध करा दी जावे तो रोग दूर हो सकते हैं। चुम्बकीय चिकित्सा का यहीं सिद्धान्त है।

पृथ्वी के चुम्बक का हमारे जीवन पर प्रभाव :-

जब तक पृथ्वी के चुम्बक का हमारी चुम्बकीय ऊर्जा पर संतुलन और नियंत्रण रहता है तब तक हम प्रायः स्वस्थ रहते हैं। जितने-जितने हम प्रकृति के समीप खुले वातावरण में रहते हैं, हमारे स्वास्थ्य में निश्चित रूप से सुधार होता है। पृथ्वी और हमारे मध्य जितने अधिक लोह उपकरण होते हैं, उतना ही कम पृथ्वी के चुम्बक से हमारा सम्पर्क रहता है। इसी कारण खुले वातावरण में विचरण करने वाले, गाँवों में रहने वाले, कुएँ का पानी पीने वाले, पैदल चलने वाले, अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ रहते हैं। जितना-जितना पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र से संपर्क बढ़ता है, उतनी-उतनी शरीर की सारी क्रियायें संतुलित एवं नियन्त्रित होती है, उतने-उतने हम रोग मुक्त होते जाते हैं।

चुम्बक का शरीर पर प्रभाव :-

चुम्बक का थोड़ा या ज्यादा प्रभाव प्रायः सभी पदार्थो पर पड़ता है। चुम्बक की विशेषता है कि वह किसी भी अवरोधक को पार कर अपना प्रभाव छोड़ने की क्षमता रखता है। जिस प्रकार बेटरी चार्ज करने के पश्चात् पुनः उपयोगी बन जाती है, उसी प्रकार शारीरिक चुम्बकीय प्रभाव को चुम्बकों द्वारा संतुलित एवं नियन्त्रित किया

जा सकता है। चुम्बक का प्रभाव हड्डी जैसे कठोरतम भाग को पार कर सकता है, अतः हड्डी सम्बन्धी दर्द निवारण में चुम्बकीय चिकित्सा रामबाण के तुल्य सिद्ध होती है।

चुम्बक चिकित्सा शरीर से पीड़ा दूर करने में बहुत प्रभावशालीहोती है। चुम्बक घावों को शीघ्र भरता है। रक्त संचार ठीक करता है एवं हड्डियों को जोड़ने में मदद करता है। रोग ग्रस्त अंग पर आवश्यकतानुसार चुम्बक का स्पर्श करने से, चुम्बकीय ऊर्जा उस क्षेत्र में संतुलित की जा सकती है। स्थायी रोगों, दर्द आदि में इससे काफी राहत मिलती हैं। चुम्बकीय उपचार करते समय इस बात का ध्यान रहे कि, रोगी को सिर में भारीपन न लगें, चक्कर आदि न आवें। ऐसी स्थिति में तुरन्त चुम्बक हटाकर धरती पर नंगे पैर घूमना चाहिये अथवा एल्यूमिनियम या जस्ते पर खड़े रहने अथवा स्पर्श करने से शरीर में चुम्बक चिकित्सा द्वारा किया गया अतिरिक्त चुम्बकीय प्रभाव कम हो जाता है।

चुम्बक का सिद्धान्त :-

छड़ी वाले चुम्बक को धागे से बांध सीधा लटकाने पर जो किनारा भौगोलिक उत्तर की तरफ स्थिर होता है, यानि जो पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव की तरफ आकर्षित होता है, चुम्बकीय चिकित्सा में उस ध्रुव को दक्षिणी ध्रुव कहते हैं। दूसरा किनारा उससे विपरीत यानी उत्तरी ध्रुव ;ज्तनम छवतजी च्वसमद्ध होता है। दो चुम्बकों के विपरीत ध्रुवों में आकर्षण होता है तथा समान ध्रुव एक दूसरे को दूर फेंकते हैं। दक्षिणी ध्रुव का प्रभाव गर्मी बढ़ाना, फैलाना, उत्तेजित करना, सक्रियता बढ़ाना होता है, जबकि उत्तरी ध्रुव का प्रभाव इसके विपरीत शरीर में गर्मी कम करना, अंग सिकोड़ना, शांत करना, सक्रियता को नियन्त्रित एवं सन्तुलित करना आदि होता है।

चुम्बकीय उपचार की तीन विधियाँ :-

हमारे शरीर के चारों तरफ चुम्बकीय प्रभाव क्षेत्र होता है। जिसे आभा मण्डल भी कहते हैं। प्रायः दाहिने हाथ से हम अधिक कार्य करते हैं। अतः दाहिने भाग में दक्षिणी ध्रुव के गुण वाली ऊर्जा तथा बांयें भाग में उत्तरी ध्रुव के गुण वाली ऊर्जा का प्रायः अधिक प्रभाव होता है। अतः चुम्बकीय ऊर्जा के संतुलन होने हेतु बायीं हथेली पर दक्षिणी ध्रुव एवं दाहिनी हथेली पर चुम्बक के उत्तरी ध्रुव का स्पर्श करने से बहुत लाभ होता है। शरीर के चुम्बक का, उपचार वाले उपकरण चुम्बक से आकर्षण होने लगता है और शरीर में चुम्बकीय ऊर्जा का संतुलन होने लगता है। परन्तु यह सिद्धान्त सदैव सभी परिस्थितियों में विशेषकर रोगावस्था में लागू हो, आवश्यक नहीं? अतः स्थानीय रोगों में चुम्बकीय गुणों की आवश्यकतानुसार चुम्बकों का स्पर्श भी करना पड़ सकता है। फिर भी चुम्बकीय उपचार की निम्न तीन मुख्य विधियाँ मुख्य होती है।

1. रोगग्रस्त अंग पर आवश्यकतानुसार चुम्बक का स्पर्श करने से, चुम्बकीय ऊर्जा उस क्षेत्र में संतुलित की जा सकती है। स्थायी रोगों, दर्द आदि में इससे काफी राहत मिलती हैं।
2. एक्युप्रेशर की रिफलेक्सोलोजी के सिद्धान्तानुसार शरीर की सभी नाड़ियों के अंतिम सिरे दोनों हथेली एवं दोनों पगथली के आसपास होते हैं। इन क्षेत्रों को चुम्बकीय प्रभाव क्षेत्र में रखने से वहां पर जमें विजातीय पदार्थ दूर हो जाते हैं तथा रक्त एवं प्राण ऊर्जा का शरीर में प्रवाह संतुलित होने लगता है, जिससे रोग दूर हो जाते हैं। इस विधि के अनुसार दोनों हथेली एवं दोनों पगथली के नीचे कुछ समय के लिये चुम्बक को स्पर्श कराया जाता है। दाहिनी हथेली एवं पगथली के नीचे सक्रियता को संतुलित करने वाला उत्तरी ध्रुव तथा बांयी पगथली एवं हथेली के नीचे शरीर में सक्रियता बढ़ाने वाला दक्षिणी ध्रुव लगाना चाहिये।

3. चुम्बकीय प्रभाव क्षेत्र में किसी पदार्थ अथवा द्रव्य, तरल पदार्थों को रखने से उसमें चुम्बकीय गुण प्रकट होने लगते हैं जैसे- जल, दूध, तेल आदि तरल पदार्थों में चुम्बकीय ऊर्जा का प्रभाव बढ़ाकर उपयोग करने से काफी लाभ पहुंचता है।

चुम्बकीय जल का उपयोग :-

चुम्बक के प्रभाव को पानी, दूध, तेल एवं अन्य द्रवों में डाला जा सकता है। शक्तिशाली चुम्बकों पर ऐसे द्रव रखने से थोड़े समय में ही उनमें चुम्बकीय गुण आने लगते हैं। जितनी देर उसको चुम्बकीय प्रभाव में रखा जाता है, चुम्बक हटाने के पश्चात् लगभग उतने लम्बे समय तक उसमें चुम्बकीय प्रभाव रहता है। प्रारम्भ के 10-15 मिनटों में 60 से 70 प्रतिशत चुम्बकीय प्रभाव आ जाता है। परन्तु पूर्ण प्रभावित करने के लिये द्रवों को कम से कम शक्तिशाली चुम्बकों के 6 से 8 घंटे तक प्रभाव में रखना पड़ता है। चुम्बक को हटाने के पश्चात् धीरे-धीरे द्रव में चुम्बकीय प्रभाव क्षीण होता जाता है। चुम्बकीय जल बनाने के लिये पानी को स्वच्छ कांच की गिलास अथवा बोतलों में भर, लकड़ी के पट्टे पर शक्तिशाली चुम्बकों के ऊपर रख दिया जाता है। 8 से 10 घंटे चुम्बकीय क्षेत्र में रहने से उस पानी में चुम्बकीय गुण आ जाते हैं। उत्तरी ध्रुव के सम्पर्क वाला उत्तरी ध्रुव का पानी तथा दक्षिणी ध्रुव के सम्पर्क वाला दक्षिणी ध्रुव के गुणों वाला पानी बन जाता है। दोनों के संपर्क में रखने से जो पानी बनता है उसमें दोनों ध्रुवों के गुण आ जाते है। तांबे के बर्तन में **S Pole** (दक्षिणी ध्रुव) तथा चांदी के बर्तन में **N Pole** (उत्तरी ध्रुव) द्वारा ऊर्जा प्राप्त पानी अधिक प्रभावशाली एवं गुणकारी होता है।

चुम्बकीय जल की मात्रा का सेवन रोग एवं रोगी की स्थिति के अनुसार किया जाता है। स्वस्थ व्यक्ति भी यदि चुम्बकीय जल का नियमित सेवन करें तो, शरीर की रोग निरोधक क्षमता बढ़ जाती है। रोग की अवस्थानुसार चुम्बकीय जल का प्रयोग प्रतिदिन 2-3 बार किया जा सकता है। हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि चुम्बकीय प्रभाव से पानी दवाई बन जाता है। अतः उसको सादे पानी की तरह आवश्यकता से अधिक मात्रा में में नहीं पीना चाहिये।

चुम्बक के अन्य उपचारों के साथ आवश्यकतानुसार चुम्बकीय पानी पीने से उपचार की प्रभावशालीता बढ़ जाती है। अतः चुम्बकीय उपचार से आधा घंटे पूर्व शरीर की आवश्यकतानुसार चुम्बकीय पानी अवश्य पीना चाहिये।

चुम्बकीय जल की भांति यदि दूध को भी चंद मिनट तक चुम्बकीय प्रभाव वाले क्षेत्र में रखा जाये तो, वह शक्तिवर्द्धक बन जाता है। इसी प्रकार किसी भी तेल को 45 से 60 दिन तक उच्च क्षमता वाले चुम्बक के चुम्बकीय क्षेत्र में लगातार रखने से उसकी ताकत बढ़ जाती है। ऐसा तेल बालों में इस्तेमाल करने से बालों सम्बन्धी रोग जैसे गंजापन, समय से पूर्व सफेद होना ठीक होते हैं। चुम्बकीय तेल की मालिश भी साधारण तेल से ज्यादा प्रभावकारी होती है। जितने लम्बे समय तक तेल को चुम्बकीय प्रभाव क्षेत्र में रखा जाता है, उतनी लम्बी अवधि तक उसमें चुम्बकीय गुण रहते हैं। थोड़े-थोड़े समय पश्चात् पुनः थोड़े समय के लिये चुम्बकीय क्षेत्र में ऐसा तेल रखने से उसकी शक्ति पुनः बढ़ायी जा सकती है। जोड़ों के दर्द में ऐसे तेल की मालिश अत्यधिक लाभप्रद होती है। दक्षिणी ध्रुव से प्रभावित दूध विकसित होते हुए बच्चों के लिये बहुत लाभप्रद होता है। दोनों ध्रुवों से प्रभावित दूध शक्तिवर्धक होता है। दोनों ध्रुवों से प्रभावित तेल बालों की सभी विसंगतियां दूर करता है।

सिर पर लगाने अथवा मानसिक रोगों के लिये चुम्बकीय ऊर्जा से ऊर्जित नारियल का तेल तथा जोड़ों के दर्द हेतु सूर्यमुखी, सरसों अथवा तिल्ली का चुम्बकीय तेल अधिक गुणकारी होता है।

शिवाम्बु (स्वमूत्र) चिकित्सा

मानव शरीर अपने आप में परिपूर्ण होता है। इसमें अपने आपको स्वस्थ रखने की क्षमता होती है। आवश्यकता है अपनी क्षमताओं को पहचानने, समझने की तथा आवश्यकतानुसार उसका सही उपयोग करने की। अज्ञान अथवा अधूरा ज्ञान एवं उसके साथ एक पक्षीय ज्ञान का पूर्वाग्रह तथा अपनी-अपनी पद्धतियों पर सम्यक् चिन्तन के अभाव में आवश्यकता से अधिक विश्वास, अधिकांश असफल उपचारों का मुख्य कारण होता है।

रोग अनेक दवा एक :-

दुनियां में रोग मुक्त करने के लिए हजारों दवाईयां उपलब्ध हैं, जिनका रोगों की रोकथाम, उपचार एवं परहेज के रूप में उपयोग किया जाता है। सभी दवाओं का शरीर के अंगों पर अपना अलग-अलग प्रभाव अथवा दुष्प्रभाव पड़ता है। ऑख के रोगों की दवा कान में नहीं डाली जा सकती। नाक में डालने वाली दवा मुंह से नहीं ली जा सकती। परन्तु शिवाम्बु बिना किसी दुष्प्रभाव, रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने वाली, स्वयं के द्वारा स्वयं के शरीर से अनेक रोगों की आवश्यकतानुसार निर्मित ऐसी दवा है, जिसका उपयोग चाहें कान हों या आंख, नाक हों या मुंह, त्वचा के रोग हों अथवा शुद्धि के लिए दिए जाने वाला एनिमा ही क्यों न हो अथवा स्वस्थ अवस्था में रोगों के बचाव हेतु और रोगावस्था में उसके निवारण के लिए सभी परिस्थितियों में बेहिचक प्रयोग में लिया जा सकता है। इसी कारण शिवाम्बु का नियमित सेवन करने वाला किसी भी छूत की बीमारी हों अथवा किसी संक्रामक रोग से प्रभावित नहीं होता। फिर वह रोग स्वाइन फ्लु का हों या चिकनगुनिया, चेचक का हो या अन्य कोई महामारी।

शिवाम्बु हानिकारक तत्व नहीं –

आज वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि शिवाम्बु शरीर से गुर्दो द्वारा रक्त के शुद्धिकरण से प्राप्त जीवनोपयोगी जल का वह भाग है, जिसमें शरीर के लिए उपयोगी सैंकड़ों ऐसे तत्त्व होते हैं, जो रक्त में होते हैं परन्तु जिनका शरीर तत्काल उपयोग नहीं कर पाता और उनको संचय करने तथा रखने के लिए शरीर में अलग व्यवस्था नहीं होने से उसको विसर्जित करना पड़ता है। ऐसे उपयोगी तत्व जो आवश्यकता से ज्यादा होते हैं, शिवाम्बु के माध्यम से शरीर के बाहर चले जाते हैं।

शिवाम्बु गंदा, खराब, विषैला, हानिकारक, विजातीय तत्त्व नहीं है, अपितु स्वास्थ्यवर्द्धक, जीवनोपयोगी, शरीर द्वारा निर्मित रासायनिक प्रयोंगों द्वारा बना जल है। शिवाम्बु में सैकड़ों उपयोगी खनिज, रसायन, हारमोन्स, एन्जाईमास, विटामीन, क्षार, पोषक तत्त्व, विष नाशक पदार्थ तथा रोग निवारक, पीड़ा को शान्त करने वाले, शरीर की प्रतिरोधक क्षमता और ताकत बढ़ाने वाले तत्त्व होते हैं, जो निष्क्रिय अंगों को सक्रिय बनाने, रक्त के शुद्धिकरण, पाचन एवं श्वसन तंत्र जैसे विभिन्न शारीरिक क्रियाओं को सुव्यवस्थित नियिन्त्रित और संतुलित रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

दवाओं के उत्पादन में शिवाम्बु का प्रयोग –

शिवाम्बु में उपकारक तथा रोग प्रतिकारक ऐसे निर्दोष रासायनिक तत्त्व मिले हैं जो रोगी और निरोगी दोनों के लिये उपयोगी होते हैं। फलस्वरूप विश्व के आधुनिक दवा निर्माताओं ने शिवाम्बु से प्राप्त जीवनोपयोगी आवश्यक तत्त्वों तथा अन्य भौतिक तत्त्वों के योग से कैन्सर, एड्स, टी.बी., हृदय रोग, दमा, नपुसंकता, गुर्दा आदि के असाध्य रोगों के उपचार हेतु बहुमूल्य प्राणदायिनी दवाइयों और इंजेक्शनों का व्यापक पैमाने पर निर्माण प्रारम्भ कर दिया है। हृदय रोगियों को दिया जाने वाला **Urokine,** जो महिलाएँ गर्भवती नहीं होती, उनके लिए दी

जाने वाली **Profasi** तथा अन्य असाध्य रोगों के लिए उपयोगी **Serocruption, Bromocriptione, Meprate, Ukidon, Pergonal (11mg) Metrodin HP Urofollitrophin (FHS)** आदि अनेक दवाईयों के निर्माण में शिवाम्बु का प्रयोग होता है।

सौन्दर्य प्रसाधनों में शिवाम्बु का प्रयोग –

शिवाम्बु सर्वोत्तम एन्टीबायोटीक, सेविंग क्रीम, सेविंग का साबुन, दाढ़ी बनाने के लिए कार्य में आने वाला साबुन तथा बाद में उपयोग में लिया जाने वाला सेव–लोशन, बालों को मुलायम बनाने वाला शैम्पू, दांतों को साफ करने वाला दंत मंजन है। इसी कारण विदेशों में सौन्दर्य प्रसाधनों तथा दंत मंजनों में शिवाम्बु का प्रयोग निरंतर बढ़ता जा रहा है। आज सौंदर्य प्रसाधन के नाम पर जीवों पर जो निर्दयता, क्रूरता, हिंसा हो रही है, उन सबका शिवाम्बु एक मात्र सस्ता, सुन्दर, प्रभावशाली दुष्प्रभावों से रहित अहिंसक विकल्प है।

शिवाम्बु से रोग निदान–

स्वाद हीन, सुगंध हीन, प्रातःकालीन प्रथम विसर्जित होने वाला शिवाम्बु अच्छे पाचन एवं स्वास्थ्य का प्रतीक होता है। शिवाम्बु चिकित्सा में रोग के निदान की भी आवश्यकता नहीं होती। क्योंकि शरीर में रोगों की आवश्यकतानुसार ही इसका निर्माण होता है। इसी कारण रोगी को जहाँ तक हों, अपने शिवाम्बु का ही सेवन करना चाहिये, भले ही मधुमेह के कारण मूत्र में सुगर अथवा कैंसर आदि रोगों के कारण, उसमें पस अथवा बदबू भी क्यों नहीं आती हो ?

शिवाम्बु का स्वभाव पर प्रभाव :–

शिवाम्बु में विभिन्न प्रकार के हारमोन्स होने से इसके सेवन से शारीरिक एवं मानसिक विकार दूर होने से मानव का स्वभाव बदलता है। व्यक्ति होशियार व मेधावी बनता है। स्मरण शक्ति तेज होती है। बुद्धि विकसित होती है। तनाव घटता है। निर्भयता एवं साहस विकसित होता है। चेहरे का तेज, वाणी में जोश, इन्द्रियों की क्षमता बढ़ती है व मनोबल दृढ़ होता है। जीवन में उत्साह बना रहता है। मन में शांति बढ़ती है। मांसाहारी को शाकाहारी बनने तथा दुर्व्यसनी को निर्व्यसनी बनने की स्वतः प्रेरणा मिलने लगती है और व्यक्ति सद्गुणों की तरफ प्रेरित होने लगता है। मन की शांति बढ़ती है, जिससे व्यक्ति का चिन्तन एवं विचार प्रभावित होते हैं। साधक, ध्यान, तप आदि आत्म साधना में प्रगति करने लगता है अर्थात् शिवाम्बु का विधिवत सेवन करने से शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक विकास में मदद मिलती है। इसी कारण शिवाम्बु पान करने वालों के दुर्व्यसन आसानी से छूटने लगते हैं।

शिवाम्बु के प्रयोग की विधियाँ–

शिवाम्बु का प्रयोग अलग–अलग रोगों में अथवा रोगों के रोकथाम हेतु अलग–अलग ढंग से किया जाता है। पीने के लिये प्रातःकालीन प्रथम शिवाम्बु सर्वश्रेष्ठ होता है। रात में निद्रा में व्यक्ति अपने मानवीय स्वभाव में ही होता है। कोई व्यक्ति कितना भी क्रूर, हिंसक, क्रोधी, निर्दयी, अशान्त क्यों न हो, निद्रा में तो वह शांत और तनाव मुक्त ही होता है। अतः उस समय शरीर में जो हारमोन्स के निर्माण होते हैं, वे विशेष स्वास्थ्य वर्धक होते हैं। अतः प्रातःकालीन शिवाम्बु अधिक लाभदायक होता है। परन्तु जो शान्त, तनाव मुक्त, सामायिक– स्वाध्याय द्वारा समभाव की साधना करने वाले, ध्यान अथवा भक्ति में सदैवलीन रहते हैं, वे कभी भी अपने शिवाम्बु का प्रयोग कर सकते हैं।

शिवाम्बु औषधि ही नहीं रसायन है। उपवास के साथ शिवाम्बु का सेवन करने से विशेष लाभ होता है। शिवाम्बु पीने के बाद कम से कम एक घंटे तक कुछ भी खाना पीना नहीं चाहिये। आंखों में, कान में, मुंह में, एनिमा आदि के रूप में ताजा शिवाम्बु को ही उपयोग में लेना चाहिये, परन्तु त्वचा सम्बन्धी रोगों में जितना पुराना

शिवाम्बु होता है उतना अधिक प्रभावशाली होता है। असाध्य रोगों में शिवाम्बु पीना, शिवाम्बु का एनिमा लेना, रोगग्रस्त निष्क्रिय भाग पर शिवाम्बु का लगाना अथवा मसाज करना, बवासीर वाले भाग को शिवाम्बु से गीला रखना लाभदायक होता है।

शिवाम्बु कब और कितना सेवन करें ?-

शिवाम्बु गर्म प्रकृति का होने से शिवाम्बु पान की एक जैसी विधि का न्याय संगत नहीं हो सकता। सर्दी की मौसम में अथवा कफ प्रकृति वाले उसका अधिकाधिक प्रयोग कर सकते हैं। वर्षा की मौसम में शिवाम्बु की मात्रा सर्दी की अपेक्षा थोड़ी कम तथा गर्मी के मौसम में तथा पित्त प्रकृति वालों को शिवाम्बु का पान अपेक्षाकृत कम करना चाहिए।

जो व्यक्ति दुर्व्यसनों से ग्रसित हैं, अथवा किसी प्रकार की दवा ले रहा है अथवा जिसका खानपान तामसिक है, उसको शिवाम्बु का अधिक सेवन करना चाहिए, ताकि थोड़े समय में ही उसके दुर्व्यसन छूट जाते हैं। दवा बंद हो जाती है तथा सात्त्विक खाने के प्रति आकर्षण बढ़ने लगता है। इसी प्रकार जिनके शरीर में मोटापा अथवा चर्बी ज्यादा है, उन्हें शिवाम्बु का सेवन अधिक मात्रा में करना चाहिये तथा जो दुबले पतले हैं, उन्हें शिवाम्बु का सीमित मात्रा में ही सेवन करना चाहिये।

विविध चिकित्साओं के साथ शिवाम्बु का प्रयोग-

हथेली और पगथली में शिवाम्बु का मर्दन करने से वहाँ जमें विकार अपना स्थान छोड़ने लगते हैं। अतः उसके पश्चात किया गया एक्यूप्रेशर उपचार, अधिक प्रभावशाली हो जाता है। शिवाम्बु को चुम्बक पर रखने से उसमें चुम्बकीय गुण, रंगीन बोतलों में धूप में रखने से अथवा अन्य विधि द्वारा रंगों की प्रकाश किरणें डालने से रंगों के गुण, पिरामिड पर रखने से पिरामिड ऊर्जा का संचय होने से, उसकी प्रभावशालीता बढ़ जाती है, तथा एक साथ अनेक चिकित्सा पद्धतियों का लाभ मिलने लगता है।

शिवाम्बु से होने वाले तात्कालिक उपचार-

1. हिलते हुए दांतों को पुनः मजबूत करने के लिये तथा दांतों संबंधी अन्य रोगों (खड्डे भरने के अलावा) में ताजे शिवाम्बु को मुंह में भरकर दिन में तीन-चार बार पंद्रह बीस मिनट घुमाने से रोग ठीक हो जाते हैं।
2. आंखों के सभी रोगों में, नेत्र ज्योति बढ़ाने के लिए, चश्में के नम्बर कम करने के लिए, रोजाना तीन-चार बार आंखों को ताजे शिवाम्बु को तीन-चार मिनट ठंडा होने के पश्चात् धोने से काफी लाभ होता है।
3. सांप, बिच्छु अथवा शरीर में अन्य जहर फैलने पर शिवाम्बु पीने से विष का प्रभाव समाप्त हो जाता है। यदि रोगी का शिवाम्बु उपलब्ध न हों तो अन्य स्वस्थ व्यक्ति का शिवाम्बु तुरंत पिलाया जा सकता है।
4. यदि रोगी का पेशाब बंद हो तो, अन्य स्वस्थ व्यक्ति का शिवाम्बु पिलाने से मूत्र में आया अवरोध दूर हो जाता है। उसके पश्चात् रोगी अपने स्वयं के शिवाम्बु का सेवन कर सकता है।
5. रोगी को जहाँ तक हो, अपने शिवाम्बु का ही सेवन करना चाहिये, भले ही मधुमेह के कारण मूत्र में सुगर अथवा कैंसर आदि रोगों के कारण, उसमें पस अथवा बदबू कितनी ही क्यों नहीं आती हो।
6. उषापान करने वालों को प्रातः प्रथम शिवाम्बु का पान करना चाहिए। उसके आधा घंटें पश्चात् उषापान कर भ्रमण करने अथवा पेट का हलका व्यायाम करने से आंतों की सफाई प्रभावशाली ढंग से हो जाती है।
7. मुँह में 20 मिनट तक शिवाम्बु रख अन्दर ही अन्दर घुमाने के साथ-साथ, आंखों को शिवाम्बु से धोने तथा कानों में शिवाम्बु डालने से आंख और कानों की कार्य क्षमता बढ़ती है।
8. नासाग्र से स्वमूत्र पान करने से श्वसन तंत्र मजबूत होता है तथा दमा, तपेदिक आदि रोग जल्दी ठीक होते हैं।

9. हथेली और पगथली में शिवाम्बु का मसाज करने से वहां जमें विजातीय तत्त्व दूर होने लगते हैं और व्यक्ति को अनेक रोगों से सहज राहत मिलने लगती है।
10. श्वास की बीमारी वालों को सीने पर नियमित शिवाम्बु का मसाज करने से फेंफड़ों में जमा कफ और विजातीय अवरोधक तत्त्व दूर होने लगते हैं। फलतः श्वास रोगों में राहत मिलती है।

शिवाम्बु के प्रति जन जागरण–

जिस घर में स्वमूत्र चिकित्सा को पारिवारिक चिकित्सा के रूप में मान्यता मिल जाती है अर्थात् सभी परिजन अपना लेते हैं, वह परिवार बड़ा भाग्यशाली होता है। उस घर में चिकित्सकीय खर्च बंद हो जाता है, उपचार हेतु समय का दुरूपयोग समाप्त हो जाता है। घर के बालक–बालिका, प्रोढ़–प्रोढ़ा–वृद्धा सभी रोग मुक्त हो दीर्घायु को प्राप्त करते हैं।

आज सैकड़ों आधुनिक चिकित्सा विशेषज्ञ, राजनेता, फिल्म अभिनेता, शिक्षाविद् शिवाम्बु के प्रति जन जागरण कर अपने स्वास्थ्य हेतु स्वमूत्र पान कर रहे हैं।

सरकारी उपेक्षा एवं हमारा दायित्वः–

भारत जैसे गरीब देश के लिए शिवाम्बु जैसी सरल, सस्ती, अहिंसक, वैज्ञानिक, प्रभावशाली, सहज, सुलभ, स्वावलम्बी पद्धति जो सबके लिए सभी स्थानों पर उपलब्ध होती है, परन्तु सही जानकारी एवं भ्रामक धारणाओं के कारण उपयोग में न ली जाए, हमारा दुर्भाग्य ही समझना चाहिए। अतः मानवतावादी दृष्टिकोण वाले सभी सवास्थ्य प्रेमियो का यह परम कर्तव्य हो जाता है कि, जन–जन तक शिवाम्बु सम्बन्धी जानकारी पहुँचावे तथा गरीब, अशिक्षित स्वास्थ्य प्रेमियों को रोग मुक्त जीवन व्यतीत करने के पुनीत सेवा कार्य में अपनी अहं भूमिका निभाए। ''शिवाम्बु चिकित्सा में रोग के निदान की भी आवश्यकता नहीं होती। क्योंकि शरीर में रोगों की आवश्यकतानुसार ही इसका निर्माण होता है। शिवाम्बु का सम्यक् उपयोग अपने आप में चिकित्सा है तथा आधुनिक चिकित्सा में कार्य में ली जाने वाली अनेकों दवाईयों का एक मात्र प्रभावशाली विकल्प।''

स्वर चिकित्सा

स्वर क्या है ?

नासिका द्वारा श्वास के अन्दर जाने और बाहर निकलते समय जो अव्यक्त ध्वनि होती है, उसी को स्वर कहते हैं।

जब श्वसन क्रिया बांयें नथुने से होती है तो उसे चंद्र स्वर का चलना, जब दाहिने नथुने से होती है तो सूर्य स्वर का चलना और जब दोनों नथुनों से बराबर होती है तो सुषुम्ना स्वर का चलना कहा जाता है।

स्वरों का प्रभाव–

स्वरों और मुख्य नाड़ियों का आपस में एक दूसरे से सीधा सम्बन्ध होता है। ये व्यक्ति के सकारात्मक और नकारात्मक भावों का प्रतिनिधित्व करती हैं जो, उसके भौतिक अस्तित्व से सम्बन्धित होते हैं। उनके सम्यक् संतुलन से ही शरीर के ऊर्जा चक्र जागृत और सजग रहते हैं। अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियाँ क्रियाशील होती हैं।

चन्द्र स्वर और सूर्य स्वर नियमित रूप से शरीर की प्रवृत्तियों के अनुसार बदलते रहते हैं। यह परिवर्तन हमारी शारीरिक और मानसिक स्थिति पर निर्भर करता है। जब हम शांत, स्थिर और अन्तर्मुखी होते हैं, उस समय प्रायः चन्द्र स्वर तथा जब हम बाह्य प्रवृत्तियों में सक्रिय होते हैं तो सूर्य स्वर अधिक प्रभावी होता है। यदि चन्द्र स्वर

की सक्रियता के समय हम शारीरिक श्रम अथवा बाह्य प्रवृत्तियों के कार्य करें तो उस कार्य में प्रायः मन नहीं लगता। उस समय मन अन्य कुछ सोचने लग जाता है। ऐसी स्थिति में यदि मानसिक कार्य करें तो, बिना किसी कठिनाई के वे कार्य सरलता से हो जाते हैं। ठीक उसी प्रकार जब सूर्य स्वर चल रहा हो और उस समय यदि हम मानसिक कार्य करते हैं तो उस कार्य में मन नहीं लगता। एकाग्रता नहीं आती। इसके बावजूद भी जबरदस्ती कार्य करते हैं तो, सिर दर्द होने लगता है। कभी-कभी सही स्वर चलने के कारण मानसिक कार्य बिना किसी प्रयास के होते चले जाते हैं, तो कभी-कभी शारीरिक कार्य भी पूर्ण रूचि और उत्साह के साथ होते हैं।

यदि सही स्वर में सही कार्य किया जाए तो हमें प्रत्येक कार्य में अपेक्षित सफलता सरलता से प्राप्त हो सकती है। जैसे अधिकांश शारीरिक श्रम वाले साहसिक कार्य जिसमें अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है, सूर्य स्वर में ही करना अधिक लाभदायक होता है। सूर्य स्वर में व्यक्ति की शारीरिक कार्य क्षमता बढ़ती है। ठीक उसी प्रकार जब चन्द्र स्वर चलता है, उस समय व्यक्ति में चिन्तन, मनन और विचार करने की क्षमता बढ़ती है।

शरीर में कुछ भी गड़बड़ होते ही गलत स्वर चलने लग जाता है। नियमित रूप से सही स्वर अपने निर्धारित समयानुसार तब तक नहीं चलने लगता, जब तक शरीर पूर्ण रूप से रोग मुक्त नहीं हो जाता।

स्वर द्वारा शरीर में गर्मी का सन्तुलन-

जब चन्द्र स्वर चलता है तो शरीर में गर्मी का प्रभाव घटने लगता है। अतः गर्मी सम्बन्धित रोगों एवं बुखार के समय चन्द्र स्वर को चलाया जाये तो बुखार शीघ्र ठीक हो सकता है। ठीक इसी प्रकार भूख के समय जठराग्नि, भोग के समय कामाग्नि और क्रोध, उत्तेजना के समय प्रायः मानसिक गर्मी अधिक होती है। अतः ऐसे समय चन्द्र स्वर को सक्रिय रखा जावे तो उन पर सहजता से नियन्त्रण पाया जा सकता है। जब दोनों स्वर बराबर अवधि में चलते हैं, शरीर की आवश्यकता के अनुरूप चलते हैं, तब ही व्यक्ति स्वस्थ रहता है।

दिन में सूर्य के प्रकाश और गर्मी के कारण प्रायः शरीर में भी रात्रि की अपेक्षा गर्मी अधिक रहती है। अतः सूर्य स्वर से सम्बन्धित कार्य सूर्य स्वर में करने के अलावा जितना ज्यादा चन्द्र स्वर सक्रिय होता हैं, उतना स्वास्थ्य अच्छा होता है। इसी प्रकार रात्रि में दिन की अपेक्षा ठण्डक ज्यादा रहती है। चांदनी रात्रि में इसका प्रभाव और अधिक बढ़ जाता है। श्रम की कमी अथवा निद्रा के कारण भी शरीर में निष्क्रियता रहती है। अतः उसको संतुलित रखने के लिए सूर्य स्वर को अधिक चलाना चाहिए। इसी कारण जिन व्यक्तियों के दिन में चन्द्र स्वर और रात में सूर्य स्वर स्वाभाविक रूप से अधिक चलते हैं वे मानव प्रायः दीर्घायु होते हैं।

चन्द्र और सूर्य स्वर का असन्तुलन ही थकावट, चिंता तथा अन्य रोगों को जन्म देता है। अतः दोनों का संतुलन और सामन्जस्य स्वस्थता हेतु अनिवार्य है। लम्बे समय तक रात्रि में लगातार चन्द्र स्वर चलना और दिन में सूर्य स्वर चलना, रोगी के खराब स्वास्थ्य का सूचक होता है। निरन्तर चलते हुए सूर्य या चन्द्र स्वर के बदलने के सारे उपाय करने पर भी यदि स्वर न बदले तो रोग असाध्य होता है तथा उस व्यक्ति की मृत्यु समीप होती है। दोनों स्वरों में जितना ज्यादा असंतुलन होता है उतना ही व्यक्ति अस्वस्थ अथवा रोगी होता है। संक्रामक और असाध्य रोगों में यह अन्तर काफी बढ़ जाता है। लम्बे समय तक एक ही स्वर चलने पर व्यक्ति की मृत्यु शीघ्र होने की संभावाना रहती है। अतः सजगता पूर्वक स्वर चलने की अवधि को समान कर असाध्य एवं संक्रामक रोगों से मुक्ति पाई जा सकती है। सजगता का मतलब जो स्वर कम चलता है उसको कृत्रिम तरिकों से अधिकाधिक चलाने का प्रयास किया जाए तथा जो स्वर ज्यादा चलता है, उसको कम चलाया जाये। कार्यों के अनुरूप स्वर का नियन्त्रण और संचालन किया जाए।

सुषुम्ना स्वर का पहचान–

चन्द्र और सूर्य नाड़ी में जब श्वांस का प्रवाह शांत हो जाता है तो सुषुम्ना में प्रवाहित होने लगता है। इस अवस्था में व्यक्ति की सुप्त शक्तियां सुव्यवस्थित रूप से जागृत होने लगती है। अतः वह समय अन्तर्मुखी ध्यान साधना हेतु सर्वाधिक उपर्युक्त होता है। ध्यान की सफलता के लिए प्राण ऊर्जा का सुषुम्ना में प्रवाह आवश्यक होता है। इस परिस्थिति में व्यक्ति न तो शारीरिक रूप से अत्यधिक क्रियाशील होता है और न ही मानसिक रूप से विचारों से अति विक्षिप्त। प्राणायाम एवं अन्य विधियों द्वारा इस अवस्था को अपनी इच्छानुसार प्राप्त किया जा सकता है। यही कारण है कि योग साधना में प्राणायाम को इतना महत्त्व दिया जाता है। प्राणायाम ध्यान हेतु ठोस आधार बनाता है। कपाल भाति अथवा नाड़ी शोधन प्राणायाम करने से सुषुम्ना स्वर शीघ्र चलने लगता है।

स्वरों की पहचान कैसे करें ?–

नथूने के पास अपनी अंगुलियां रख श्वसन क्रिया का अनुभव करें। जिस समय जिस नथूने से अपेक्षाकृत अधिक श्वास प्रवाह होता है, उस समय उस स्वर की प्रमुखता होती है। बांयें नथूने से श्वास चलने पर चन्द्र स्वर, दाहिने नथूने से श्वास चलने पर सूर्य स्वर तथा दोनों नथूने से श्वास चलने की स्थिति को सुषुम्ना स्वर का चलना कहते हैं।

स्वर को पहचानने का दूसरा तरीका है कि हम बारी–बारी से एक नथूना बंद कर दूसरे नथूने से श्वास लें और छोड़ें। जिस नथूने से श्वसन सरलता से होता है, उस समय उससे सम्बन्धित स्वर प्रभावी होता है।

स्वर बदलने की विधियां :–

अस्वाभाविक अथवा प्रवृत्ति की आवश्यकता के विपरीत स्वर शरीर में अस्वस्थता का सूचक होता है। निम्न विधियों द्वारा स्वर को सरलतापूर्वक कृत्रिम ढंग से बदला जा सकता है, ताकि हमें जैसा कार्य करना हो उसके अनुरूप स्वर का संचालन कर प्रत्येक कार्य को सम्यक् प्रकार से पूर्ण क्षमता के साथ कर सकें।

1. जो स्वर चलता हो, उस नथूने को अंगुलि से या अन्य किसी विधि द्वारा थोड़ी देर तक दबाये रखने से, विपरीत इच्छित स्वर चलने लगता है।
2. चालू स्वर वाले नथूने से पूरा श्वास ग्रहण कर, बन्द नथूने से श्वास छोड़ने की क्रिया बार–बार करने से बन्द स्वर चलने लगता है।
3. जो स्वर चालू करना हो, शरीर में उसके विपरीत भाग की तरफ करवट लेकर सोने तथा सिर को जमीन से थोड़ा ऊपर रखने से इच्छित स्वर चलने लगता है।
4. जिस तरफ का स्वर बंद करना हो उस तरफ की बगल में दबाव देने से चालू स्वर बंद हो जाता है तथा इसके विपरीत दूसरा स्वर चलने लगता है।
5. जो स्वर बंद करना हो, उसी तरफ के पैरों पर दबाव देकर, थोड़ा झुक कर उसी तरफ खड़ा रहने से या उधर गर्दन को घुमाकर ठोडी पर रखने से कुछ मिनटों में उस तरफ का स्वर बंद हो जाता है।
6. घी अथवा शहद जो भी बराबर पाचन हो सके, पीने से चालू स्वर तुरन्त बंद हो जाता है। परन्तु साधारण अवस्था में दूध या अन्य तरल पदार्थ पीने से भी स्वर बदली हो जाता है।
7. चलित स्वर में स्वच्छ रूई डालकर नथूने में अवरोध उत्पन्न करने से स्वर बदल जाता है।

स्वरों से रोगोपचार

1. **गर्मी सम्बन्धी रोग**– गर्मी, प्यास, बुखार, पीत्त सम्बन्धी रोगों में चन्द्र स्वर चलाने से शरीर में शीतलता बढ़ती है, जिससे गर्मी से उत्पन्न असंतुलन दूर हो जाता है।

2. **कफ सम्बन्धी रोग**- सर्दी, जुकाम, खांसी, दमा आदि कफ सम्बन्धी रोगों में सूर्य स्वर अधिकाधिक चलाने से शरीर में गर्मी बढ़ती है। सर्दी का प्रभाव दूर होता है।
3. **आकस्मिक रोग**- जब रोग का कारण समझ में न आये और रोग की असहनीय स्थिति हो, ऐसे समय रोग का उपद्रव होते ही जो स्वर चल रहा है उसको बन्द कर विपरीत स्वर चलाने से तुरन्त राहत मिलती है।

सूर्य किरण चिकित्सा

सूर्य किरण चिकित्सा अति प्राचीन :-

सूर्य ताप, प्रकाश एवं ऊर्जा का सबसे बड़ा प्राकृतिक स्रोत है। जो प्राणिमात्र को सहज उपलब्ध है। सूर्य अपने अमूल्य स्रोतों के उपयोग के बदले में अन्य बिजली उत्पादन कम्पनियों की भांति हमारे पास भुगतान हेतु बिल नहीं भिजवाता और न हमारे से कुछ भी अपेक्षाएँ रखता है अथवा अपने प्रभुत्व पर गर्व करता है। सूर्य तथा प्राणी मात्र का आपस में घनिष्टतम संबंध होता है। सूर्य के बिना पृथ्वी पर किसी भी प्राणी, पशु और वनस्पति के जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। अर्थवेद, सूर्योपनिषद आदि उपनिषद, समस्त पुराण, महाभारत, रामायण आदि प्राचीन ग्रन्थ सूर्य विज्ञान से भरे पड़े हैं। वैदिक काल में भारतीय सूर्य के गुणों से इतने अधिक प्रभावित थे कि उन्होंने सौर पुराण की रचना कर डाली। सौर सम्प्रदाय बनाया तथा अनेकों सूर्य मन्दिरों का निर्माण किया। अनादि काल से सूर्य नमस्कार एवं सूर्य स्नान का हमारे राष्ट्र में प्रचलन है।

भगवान महावीर की कठोर साधना में सूर्य की आतापना (धूप सेवन) का विशेष उल्लेख मिलता है। जैन साधुओं को दिन के तीसरे प्रहर अर्थात् धूप में आहार एवं विहार हेतु आने जाने का शास्त्रीय विधान है, भले ही आधुनिक युग में उस निर्देश की प्रायः पालना कम होती है। परन्तु आज हम सूर्य की ऊर्जा का स्वास्थ्य हेतु लाभ लेना नहीं जानते। घर एवं व्यवसायिक स्थलों पर दरवाजे बंद कर, पर्दे लगाये जाते हैं और बिजली की रोशनी में कार्य करने का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। जिसके परिणाम स्वरूप वहां रहने एवं कार्य करने वालों की रोग प्रतिरोधक क्षमता क्षीण होती जा रही है।

कठोर परिश्रम करने वाले गांव के किसानों एवं मजदूरों को काफी ज्यादा केलोरी खर्च करनी पड़ती है। परन्तु उनके भोजन में प्रायः बहुत कम केलोरी ही उपलब्ध होती है। बाकी सारी आवश्यक ऊर्जा उन्हें सूर्य की रोशनी से ही प्राप्त होती है।

प्रातःकालीन उदित सूर्य दर्शन से लाभ :-

सूर्योदय के समय वायुमण्डल में अदृश्य परा बैंगनी किरणों (Ultra Violet Rays) का विशेष प्रभाव होता है जो विटामीन डी का सर्वोत्तम स्रोत होती है। ये किरणे रक्त में लाल और श्वेत कणों की वृद्धि करती है। श्वेत कण बढ़ने से शरीर में रोग प्रतिकारात्मक शक्ति बढ़ने लगती है। पेरा बैंगनी किरणे तपेदिक, हिस्टिरिया, मधुमेह और महिलाओं के मासिक धर्म संबंधी रोगों में बहुत लाभकारी होती है। ये शरीर में विकारनाशक शक्ति पैदा करती है तथा रक्त में कैलशियम की मात्रा भी बढ़ाती है, जिससे शरीर में हड्डियाँ मजबूत होती है। आंतों में अम्ल-क्षार का संतुलन एवं शरीर में फास्फोरस-कैल्शियम का संतुलन बना रहता है।

सूर्य किरणों का स्वास्थ्य वर्धक प्रभाव :-

प्रातःकालीन सूर्योदय के सामने चन्द मिनटों तक देखने से नेत्र ज्योति बढ़ती है, परन्तु सूर्योदय के 40-50 मिनट पश्चात् सूर्य को खुले नेत्रों से देखना हानिप्रद हो सकता है। उदित होते हुए सूर्य दर्शन से शरीर से सभी

आवश्यक तत्त्वों का पोषण होता है। हृदय रोग, मस्तिष्क विकार, आंखों का विकार आदि अनेक व्याधियाँ दूर होती है।

प्रात:कालीन हल्की धूप में सूर्य की तरफ मुख कर तथा आंखे बंद कर शरीर को दाएं-बाएं, आगे-पिछे धीरे-धीरे चारों तरफ घुमाने, झूमने से गर्दन के रोग दूर होते है। मस्तिष्क में रक्त का संचार सुव्यवस्थित होता है तथा तनाव दूर होता है। सूर्योदय के सामने वज्रासन में बैठ सिंहासन मुद्रा में जीभ को जितना निकाल सकें, बाहर निकाल कर, आंखे पूरी खोलकर, नाक से श्वास लेते हुए, सूर्य को निहारते हुए यथा शक्ति जोर से दहाड़ने से गले, नाक, कान, मुंह, छाती, फेंफड़ों आदि के रोग दूर होते हैं तथा वायु नली, स्वर नली और भोजन नली सशक्त होती है।

सूर्य किरणें जीवनी बढ़ाती है, स्नायु दुर्बलता कम करती है, पाचन और मल निष्कासन की क्रियाओं को बल देती है, पेट की जठराग्नि प्रदीप्त करती है, रक्त परिभ्रमण संतुलित रखती है, हड्डियों को मजबूत बनाती है। रक्त में कैल्शियम फास्फोरस और लोहे की मात्रा बढ़ाती है, अन्तः श्रावी ग्रन्थियों के श्राव बनाने में सहयोग करती है।

सूर्य किरणों में विभिन्न रंग :-

सूर्य की किरणों में सात दृश्यमान एवं दो अदृश्यमान रंगों की किरणें होती है। दृश्यमान सात रंग निश्चित क्रम से होते हैं, जिन्हें इन्द्र धनुष के समय अथवा विशेष प्रयोगों द्वारा आसानी से देखा जा सकता है। विभिन्न रंगों का मानव के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक रंग के अपने विशेष स्वास्थ्यवर्धक गुण होते हैं। सूर्य की किरणों से होने वाले सात रंग बैंगनी (Violet), नीला (Indigo), आसमानी (Blue), हरा (Green), पीला (Yellow), नारंगी (Orange), लाल (Red) के क्रम से होते हैं।

पहले तीन रंग शरीर में गर्मी को नियंत्रित करने तथा कष्ट में शांति पहुँचाने में सहायक होते हैं। ये रंग शरीर के अवयवों में रसायनिक परिवर्तन करने में अहं भूमिका निभाते हैं। अत: सूर्य की इन तीन रंग की किरणों तथा पराबैंगनी किरणों को रसायनिक किरणें भी कहते हैं। मध्य वाला हरा रंग गर्मी एवं सर्दी के प्रभाव को संतुलित रखने में सक्षम होता है। अन्तिम तीन रंग शरीर में गर्मी पहुँचाने वाले होते हैं। वर्तमान में सूर्य किरण चिकित्सा में सात रंगों के स्थान पर प्रत्येक समूह में से एक रंग का ही उपयोग करने का अधिक प्रचलन हैं। जिससे चिकित्सा पद्धति अधिक सरल बन गयी हैं। प्रथम तीन रंगों के समूह में से प्राय: नीला रंग, अंतिम रंगों के समूह में से नारंगी एवं बीच के हरे रंग का अधिकतर उपयोग किया जाता है। परन्तु विशेष एवं लम्बे रोगों की स्थिति में बैंगनी एवं लाल रंग का भी उपयोग किया जा सकता हैं। रोगी के लिये कौनसी किरणों का उपचार किया जाये, यह रोग की स्थिति पर निर्भर करता है।

आयुर्वेद के त्रि-दोष सिद्धान्त से समानता :-

आयुर्वेद के आधारभूत त्रिदोष सिद्धान्त के अनुसार कफ, वात एवं पित्त रूपी तीन दोषों का असन्तुलन ही रोग उत्पत्ति का प्रमुख कारण होता है। सूर्य किरण चिकित्सा में कफ प्रधान अथवा सर्दी के कारण होने वाले रोगों में नारंगी तथा लाल रंग का, वात प्रधान या शरीर में गन्दगी बढ़ जाने एवं उसका सही विसर्जन न होने से उत्पन्न होने वाले रोगों में हरे रंग का तथा पित्त प्रदान अथवा गर्मी की अधिकता से होने वाले रोगों में नीले रंग के विधिवत् प्रयोग द्वारा कफ, वात एवं पित्त को संतुलित कर रोगी को रोगमुक्त किया जा सकता है। सूर्य किरण चिकित्सा शारीरिक रोगों के साथ-साथ हमारे स्वभाव तथा मानसिक स्थिति बदलने में भी सहायक होती हैं, जिससे क्रोधी व्यक्ति शान्त एवं सुस्त व्यक्ति, फुर्तीला बन सकता है।

तीन रंग की विशेषताएँ

नारंगी रंग की विशेषताएँ :-

आमाशय, तिल्ली, लीवर, आंतों फेंफड़ों व हाथ पैर के रोगों में इसका अधिक अनुकूल प्रभाव पड़ता है। यह आयोडीन की कमी को मिटाता है। रक्त में लाल कण बढ़ाता है। मांसपेशियाँ स्वस्थ बनाता है और झुर्रियां मिटाने में सहायक होता है। रक्त संचालन एवं स्नायु संस्थान को सक्रिय बनाता है। गतिहीन अंगों की जड़ता दूर कर उसमें गति लाने की क्षमता रखता है। भूख न लगना, गैस, जोड़ों का दर्द, खांसी, दमा, बच्चों की बिस्तर में पेशाब करने की आदत, निम्न रक्त चाप, स्नायु दुर्बलता आदि रोगों को मिटाने की अद्‌भुत क्षमता रखता हैं। सुस्ती आने, जम्भाइयाँ लेने, अधिक नींद आने, नाखून नीले पड़ जाने आदि रोगों में नारंगी रंग काफी लाभप्रद होता है।

नारंगी रंग के सेवन से पेट की गैस दूर होती है। अम्लता वाले रोगियों को विशेष लाभ होता है। खून में लाल कणों की वृद्धि होती है। वृद्धों के लिये ताकत की दवा के समान होता है। स्त्रियों की माहवारी के समय दर्द होने अथवा कम आने पर नारंगी पानी पीने तथा लाल तेल की मालिश नलों और कमर पर करने से लाभ होता है। नारंगी पानी पीने से मलेरिया से बचाव होता है। बारी-बारी के अन्तराल से बुखार आने पर जिस दिन बुखार नहीं आया हुआ हो मुंह फीका हो, उस दिन नारंगी रंग का पानी देना चाहिए, परन्तु बुखार वाले दिन नीला पानी देना अधिक प्रभावशाली होता है।

नारंगी रंग मानसिक प्रभाव की दृष्टि से साहस, उत्साह एवं इच्छाशक्ति बढ़ाने में सहायक होता है। नारंगी रंग की दवा का प्रयोग सदैव भोजन या नाश्ते के 15 मिनट बाद और 30 मिनट के भीतर करना चाहिये।

हरे रंग की विशेषताएँ :-

हरा रंग गर्म और ठण्डे रंग के बीच का रंग होने से गर्मी तथा सर्दी के प्रभावों को संतुलित करता है। यह शरीर की गन्दगी बाहर निकालने, शरीर का ताप सन्तुलित रखने, कब्जी मिटाने तथा खून को साफ करने में विशेष सहायक होता है। मानसिक दृष्टि से हरा रंग राग एवं द्वेष को घटाकर समभाव लाने में सहायक तथा मन को प्रसन्न रखने वाला होता है। शरीर के विषैले तत्त्वों को शरीर से बाहर निकाल फैंकने की अद्‌भूत क्षमता के कारण छूत की बीमारियों के निवारण में यह बहुत ही उपयोगी होता है।

अल्सर, टाईफाइड, चेचक, सूखी खाँसी, खुले घाव, दाद, पथरी, रक्तचाप, मिर्गी, हिस्टीरिया, मुंह में छाले तथा शरीर के किसी भी भाग में पीब पड़ने की अवस्था में उनको नष्ट करने में काफी लाभप्रद होता है। आँतों, गुर्दो, मूत्राशय, त्वचा, कमर व पीठ के नीचे के अंगों से संबंधित रोगों में हरा रंग अधिक प्रभावशाली होता है। शरीर में इस रंग की कमी से विभिन्न चर्म रोग तथा दोषों की सम्भावनायें बढ़ जाती है। नेत्र रोगों में भी यह विशेष लाभकारी होता है।

मोतिया बिम्ब पकने से पूर्व नियमित हरे पानी से आंखें धोने से मोतिया बिम्ब (Cataract) होने की संभावनाएँ कम हो जाती है। चर्म रोग में हरा पानी तथा नीला तेल रोग ग्रस्त त्वचा पर अथवा दाद पर लगाने से रोग जड़ मूल से नष्ट हो जाता है।

हरे रंग की बोतल में बनाई गई दवा का प्रयोग सदैव प्रातःकाल खाली पेट या आधा घण्टे से एक घण्टे भोजन के पहले करना चाहिये।

नीले रंग की विशेषता :-

नीला रंग ठण्ड़ा, शान्तिदायक, कीटाणुनाशक एवं सिकुड़न वाले स्वभाव का होने से गर्मी के प्रकोप से उत्पन्न रोगों में विशेष प्रभावशाली होता है। इसके उपयोग से मानसिक तनाव कम होता है तथा साधक आध्यात्मिक विकास एवं ध्यान में सरलता पूर्वक विकास कर सकता है। कीटाणुनाशक होने के कारण मवाद पड़ने की अवस्थाओं में काफी लाभप्रद होता है। शरीर की गर्मी, हाथ पैरों की जलन, प्यास की अधिकता, तेज बुखार, हैजा, अजीर्ण, दस्त, अनिद्रा, मिर्गी, पागलपन, हिस्टीरिया, उच्च रक्तचाप मूत्रावरोध, मूत्र में जलन, शरीर में किसी प्रकार का जहर फैल जाना, जैसे रोगों में नीले रंग की दवा काफी लाभप्रद होती है। नीले रंग की दवा शरीर के अन्दर अथवा बाहर से बहने वाले खून को बन्द करती है। गर्मी से गला पड़ने पर नीले पानी के गरारे से लाभ होता है। गले, गर्दन, मुँह मस्तिष्क एवं सिर से संबंधित रोगों पर नीले रंग का अधिक अनुकूल प्रभाव पड़ता है। नीले रंग का प्रयोग सदैव भोजन या नाश्ते के आधा घण्टे पूर्व करना चाहिए।

लकवा, सन्धिप्रवाह, छोटे जोड़ों का दर्द (गंठिया), विभिन्न वात, कम्पनजन्य रोग व ठण्ड से उत्पन्न विकार और अधिक कब्ज की शिकायत में नीले रंग का प्रयोग नहीं करना चाहिए। नीले रंग के दुरुपयोग में होने वाले कष्ट और विकार नारंगी या लाल रंग के उचित प्रयोग से दूर हो जाते हैं।

दवा बनाने की विधि :-

सूर्य किरण चिकित्सा में पानी की दवा, चीनी अथवा मिश्री की दवा, सूर्यतप्त तेल, ग्लिसरीन की दवा, सूर्यतप्त हवा एवं सूर्य की किरणों का सीधा उपयोग करने से रोगों का उपचार किया जा सकता है।

पानी की दवा तैयार करने की विधि :-

रोग के अनुसार जिस रंग का पानी तैयार करना हो, उस रंग की बोतल लेकर उसको पूर्णतया साफ कर लें। यदि कोई कागज चिपके हुये हों तो, उन्हें हटा दें, अगर विशेष रंग की कांच की बोतल न मिले तो सफेद रंग की बोतल पर इच्छित रंग का सेलोफेन कागज दोहरा कर लपेट लें। बोतल को तीन चौथाई शुद्ध पानी से भर लें। बोतल का मुँह बन्द कर किसी लकड़ी के पट्टे पर रख, उसे धूप दिखाने से सूर्य की किरणों का प्रभाव पानी में आने लगता है। 6 से 8 घण्टे धूप में रखने से साधारण पानी दवा का रूप ग्रहण कर लेता है। सूर्यतप्त पानी को धूप जाने के पश्चात् सुरक्षित स्थान पर रख स्वयं ठण्डा होने देना चाहिए। एक बार पानी दवा बनने के बाद तीन दिन तक उसमें रोग निवारक शक्ति रहती है, परन्तु जो बोतल रोजाना धूप में रखी जाती है, उसका पानी अधिक शक्तिशाली बन जाता है।

सफेद रंग की बोतल में तैयार किया गया पानी :-

पीलिया या महामारी के दिनों में सफेद बोतल का धूप में रखा हुआ पानी पीने से महामारी से बचा जा सकता है। यह पानी बच्चों को ताकत देता है एवं दांत निकलते समय इस पानी को देने से दांत सरलता से निकल जाते है। हड्डी टूटने की स्थिति में सफेद पानी पीने से हड्डी के जुड़ने में सहायता मिलती है।

जल बनाने में सावधानी :-

सूर्यास्त होते होते बोतल को धूप से हटा देना चाहिए। चन्द्रमा, तारों या दीपक आदि अन्य प्रकार का प्रकाश (सूर्य के अलावा) बोतल पर पड़ जाने से वह कभी-कभी निरूपयोगी ही नहीं, अपितु हानिकारक भी हो सकता है। अतः उसे सफेद कपड़े से ढ़क कर रखना चाहिए। अलग-अलग रंग की बोतले धूप में पास-पास में नहीं रखनी चाहिए।

तेल, चीनी या अन्य दवा बनाने की विधि :-

पानी की भांति सूर्य तप्त तेल, मिश्री, चीनी, गिलिसरीन आदि से भी तैयार किया जा सकता है, परन्तु ये दवाईयाँ लगातार 50 से 60 दिन तक सूर्य की धूप में रखने से तैयार होती है। दवा का प्रभाव भी दो तीन माह तक रहता है। तीन माह पश्चात् पुनः तीन दिन तक उसी रंग की धूप में रख देने से उसमें पुनः रोग नाशक प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है। वैसे बीच में समय-समय पर धूप दिखाने से उनकी रोग निवारक क्षमता बढ़ जाती है।

नीले तेल के विशेष लाभ :-

1. नारियल के नीले रंग के तेल की सिर में मालिश करने से सिर दर्द, अनिद्रा, बुखार दूर होता है। दिमागी कार्य की क्षमता बढ़ती है। स्नायु तंत्र शांत होता है।
2. मच्छर अथवा विषैले जानवरों के काटने पर अथवा जलने पर नीला तेल लगाने से तुरन्त आराम मिलता है।
3. नीला तेल गर्म करके कान में डालने से कान का दर्द शीघ्र ठीक होता है।
4. बवासीर के मसों पर नीला तेल बहुत गुणकारी होता है।
5. बच्चों के दांत निकलते समय नीले तेल की सिर में मालिश करने से दांत आराम से निकल जाते हैं।

सूर्य की किरणों को सीधा डालने की विधि :- 15 से 30 मिनट तक सहनशक्ति के अनुसार रोगग्रस्त अंगों पर सीधी रंगीन सूर्य किरणें डालने से शीघ्र प्रभाव पड़ता है। पुरानी तथा कठोर सूजन में लाल या नारंगी रंग का प्रभाव व जलन वाली तथा लालीयुक्त सूजन की अवस्था में नीले प्रकाश से आराम मिलता है। आँखों की बीमारी में हरे रंग की किरणें डालना लाभप्रद होता है। चीनी पंच तत्त्व के सिद्धान्तानुसार हरे रंग कि किरणों से यकृत एवं पित्ताशय, लाल रंग की किरणों से हृदय और छोटी आंत, पीले रंग की किरणों से तिल्ली, पेन्क्रियाज और आमाशय, सफेद रंग की किरणों से फेफड़ें और बड़ी आंत तथा नीले रंग की किरणों से गुर्दे एवं मूत्राशय सशक्त होते हैं।

जल चिकित्सा

शरीर में जल के कार्य :-

हवा के पश्चात् शरीर में दूसरी सबसे बड़ी आवश्यकता पानी की होती है। पानी के बिना जीवन लम्बे समय तक नहीं चल सकता। शरीर में लगभग दो तिहाई भाग पानी का होता है। शरीर के अलग-अलग भागों में पानी की आवश्यकता भी अलग-अलग होती हैं। जब पानी के आवश्यक अनुपात में असंतुलन हो जाता है तो शारीरिक क्रियाएँ प्रभावित होने लगती हैं।

हमारे शरीर में जल का प्रमुख कार्य भोजन पचाने वाली विभिन्न प्रक्रियाओं में शामिल होना तथा शरीर संरचना में सहयोगी अवयवों का निर्माण करना होता हैं। जल शरीर के भीतर विद्यमान गंदगी को पसीने एवं मलमूत्र के माध्यम से बाहर निकालने, शरीर के तापक्रम को नियंत्रित करने तथा शारीरिक शुद्धि के लिए बहुत उपयोगी तथा लाभकारी होता हैं। शरीर में जल की कमी से कब्ज, थकान, ग्रीष्म ऋतु में लूं आदि की अधिक संभावना रहती हैं। जल के कारण ही हमें, छः प्रकार के रसों-मीठा, खट्टा, कड़वा, तीखा और कषैला आदि का अलग-अलग स्वाद अनुभव होता है। अतः हमें यह जानना और समझना आवश्यक है कि पानी का उपयोग हम कब और कैसे करें ?पानी कितना, कैसा और कब पीये ?उसका तापमान कितना हो ?

पानी कैसा पीयें ?

स्वच्छ, शुद्ध, हल्का, छना हुआ, अथवा उबला हुआ पानी स्वास्थ्य के लिए उपयोगी होता है। छने हुए पानी में भी जलवायु एवं वातावरण के अनुसार निश्चित समय पश्चात जीवों के उत्पत्ति की पुनः सम्भावना रहती है। अतः उपयोग लेते समय इस तथ्य की छानबीन कर लेनी चाहिए, एवं आशंका होने पर पीने से पूर्व पुनः छानकर ही पीना चाहिए। परन्तु आजकल पश्चिम के अन्धा:नुकरण एवं भ्रामक विज्ञापनों से प्रभावित स्वयं की रोग प्रतिरोधक क्षमता ठीक न होने के कारण मिनरल वाटर के नाम से पुराना, अनछना, हानिकारक प्लाष्टिक बोतलों में बंद महंगा पानी पीने का प्रचलन बढ़ता जा रहा है, जो सबके लिए आवश्यक नहीं है। इस तथ्य पर पूर्वाग्रह छोड़ समग्र दृष्टिकोण से चिन्तन आवश्यक है। जैन अनुयायी गोबर की राख मिश्रीत धोवन पानी का उपयोग करते हैं जो स्वास्थ्यवर्धक होता है। रोग प्रतिकारात्मक क्षमता बढ़ाता है। इस संबंध में शोधपूर्ण साहित्य भी उपलब्ध है। जिसका अध्ययन कर सत्य को स्वीकारना चाहिए।

पानी कैसे पीयें ?

पानी को धीरे-धीरे, घूंट-घूंट, बैठकर, चन्द्र स्वर में पीना लाभ प्रद होता है। घूंट-घूंट पानी पीने के साथ थूक मिल जाने से वह पानी पाचक बन जाता है। इसी कारण हमारे यहाँ लोकोक्ति प्रसिद्ध है ''खाना पीओ और पानी खाओं'' अर्थात् धीरे-धीरे पानी पीओ। खड़े-खड़े पानी पीने से गैस, वात विकार, घुटने तथा अन्य जोड़ों का दर्द, दृष्टि दोष एवं श्रवण विकार पनपने की संभावना रहती है।

पानी कब पीएं ?

भोजन पाचन की आमाशय में प्रारम्भिक क्रिया के पश्चात् पानी पीना स्वास्थ्यवर्धक होता है। भोजन पाचन से पूर्व पानी पीने से आंव की वृद्धि, अपच और कब्ज होने की संभावना रहती है। भोजन के दो घंटे पश्चात् जितनी आवश्यकता हो खूब पानी पीना चाहिए, जिससे शरीर में पानी की कमी न हों। भोजन के 1-1/2 से 2 घंटे पहले पर्याप्त मात्रा में जल पीना उत्तम रहता है। ऐसा करने से पेट के अन्दर अपचित आहार जो सड़ता रहता है, पानी में पूर्णतया घुल जाता है। पाचन संस्थान एवं पाचक रस ग्रन्थियाँ सबल एवं स्वस्थ बनती है। दिन में दो तीन घंटे के अन्तर पर पानी अवश्य पीना चाहिए, क्योंकि इससे अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का श्राव पर्याप्त मात्रा में निकलता रहता है।

उच्च अम्लता में अधिक पानी पीना चाहिए, क्योंकि वह पेट तथा पाचन नली के अन्दर की कोमल सतह को जलन से बचाता है। पर्याप्त मात्रा में जल पीने से पित्ताशय व गुर्दे की पथरी तथा जोड़ों की सुजन व दर्द ठीक होते हैं। रक्त में मिश्रित विकार घुलकर बाहर निकल जाते है। भय, क्रोध, मूर्च्छा, शोक व चोट लग जाने के समय अन्तःश्रावी ग्रन्थियों द्वारा छोड़े गये हानिकारक श्रावों के प्रभाव को कम करने के लिये पानी पीना लाभप्रद होता है। डायरिया, हैजा व उल्टी, दस्त के समय उबाल कर ठंडा किया हुआ पानी पीना चाहिये। उपवास के समय पाचन अंगों को भोजन पचाने का कार्य नहीं करना पड़ता। अतः अधिक पानी पीने से शरीर से विजातीय तत्त्वों के निष्कासन में मदद मिलती है।

स्वास्थ्य वर्धक उषापान

प्रातःकाल बिना कुछ खाये पीये बिना दांतुन एवं कुल्ला कीये, भर पेट पानी पीने को उषा पान कहते हैं। रात भर में निःश्वास के साथ जीभ पर विजातीय तत्व जमा हो जाते है। इसी कारण दिन भर कार्य करने के बावजूद मुँह में जितनी बदबू नहीं आती, उतनी निद्रा में बिना कुछ खायें ही आती है। ये विजातीय तत्त्व जब पानी के साथ घुलकर पेट में पुनः जाते हैं तब औषधि का कार्य करते हैं। अतः उषापान का पूर्ण लाभ बिना दांतुन पानी

पीने से ही मिलता है। उसके पश्चात् टहलने अथवा पेट का हलन-चलन वाला व्यायाम (संकुचन और फैलाना) करने से पेट में आतें एक दम साफ हो जाती है, जिससे पाचन संबंधी सभी प्रकार के रोगों में शीघ्र राहत मिलती है। पानी पीने का श्रेष्ठतम समय प्रातःकाल भूखे पेट होता है। रात्रि के विश्राम काल में चयापचय क्रिया द्वारा जो विजातीय अनावश्यक तत्त्व शरीर में रात भर में जमा हो जाते हैं, उनका निष्कासन गुर्दे, आंते, त्वचा अथवा फेंफड़ों द्वारा होता है। अतः उषापान से ये अंग, सक्रिय होकर समस्त विजातीय पदार्थों को बाहर निकालने में सक्रिय हो जाते हैं। जब तक रात भर में एकत्रित विष भली भांति निष्काषित नहीं होता और ऊपर से आहार किया जाये तो विभिन्न प्रकार के रोग होने की संभावना रहती है। उषापान से बवासीर, सूजन संग्रहणी, ज्वर, उदर रोग, कब्ज, आंत्ररोग, मोटापा, गुर्दे संबंधी रोग, यकृत रोग, नासिका आदि से रक्त स्राव, कमर दर्द, आँख, कान आदि विभिन्न अंगों के रोगों से मुक्ति मिलती है। नेत्र ज्योति में वृद्धि, बुद्धि निर्मल तथा सिर के बाल जल्दी सफेद नहीं होते अर्थात् अनेक रोगों में लाभ होता है।

पानी कब नहीं पीना चाहिए?

चिकनाई वाले पदार्थ अथवा मीठा खाने के तुरन्त बाद पानी पीने से खांसी और गले के रोग होने की संभावना रहती है। धूप में चलकर आने पर अथवा व्यायाम के पश्चात् जब तक पसीना सूख नहीं जायें पानी नहीं पीना चाहिये, अन्यथा तुरन्त जुकाम होने की संभावना रहती हैं। चिकित्सकों की दृष्टि से शौच के तुरन्त पश्चात् भी पानी नहीं पीना चाहिये। सोने के लगभग दो घंटे पूर्व तक पानी नहीं पीना चाहिये। विशेषकर ऐसे व्यक्तियों को जिन्हें रात्रि में पेशाब के लिए बार-बार उठना पड़ता है। सोते समय पानी पीने से निद्रा में पेशाब की शंका बनी रहने के कारण गहरी निद्रा आने में बाधा पहुँचती है। एक बार निद्रा भंग होने के पश्चात् पुनः निद्रा सरलता से नहीं आती। अत। ऐसे व्यक्तियों को अधिक समय तक सोये रहना पड़ता है। परिणाम स्वरूप प्रातः समय पर जल्दी नहीं उठ पाते।

खाना खाने के पश्चात् आमाशय में लीवर, पित्ताशय, पेन्क्रियाज आदि के श्राव और अम्ल के मिलने से जठराग्नि प्रदीप्त होती हैं। अतः प्रायः जनसाधारण को पानी पीने की इच्छा होती है परन्तु पानी पीने से पाचक रस पतले हो जाते हैं, जिसके कारण आमाशय में भोजन का पूर्ण पाचन नहीं हो पाता। फलतः भोजन से जो ऊर्जा मिलनी चाहिए, प्रायः नहीं मिलती। आहार के रूप में ग्रहण किये गये जिन पौष्टिक तत्त्वों से रक्त, वीर्य आदि अवयवों का निर्माण होना चाहिये नहीं हो पाता। अपाच्य भोजन, आमाशय और आंतों में ही पड़ा रहता है, जिससे मंदाग्नि, कब्जी, गैस आदि विभिन्न पाचन संबंधी रोगों के होने की संभावना रहती है। दूसरी तरफ अपाच्य भोजन को मल द्वारा निष्काषित करने के लिये शरीर को व्यर्थ में अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है। भोजन के पश्चात् पानी पीना अति आवश्यक हो तो गरम-गरम पीने योग्य थोड़ा पानी घूंट-घूंट पी सकते हैं जिससे आमाशय की पाचन क्षमता कम नहीं होती।

गरम पानी औषधि है

ठण्डे पेय तथा फ्रीज में रखा अथवा बर्फ वाला पानी स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होता है। स्वस्थ अवस्था में हमारे शरीर का तापक्रम 98.4 डिग्री फारहनाइट के लगभग होता है। जिस प्रकार बिजली के उपकरण एयर कंडीशनर, कूलर आदि चलाने से बिजली खर्च होती है। उसी प्रकार ठण्डे पेय पीने अथवा खाने से शरीर को अपना तापक्रम नियन्त्रित रखने के लिये अपनी संचित ऊर्जा व्यर्थ में खर्च करनी पड़ती है। अतः पानी यथा संभव शरीर के तापक्रम के आसपास तापक्रम जैसा पीना चाहिये। आजकल सामूहिक भोजों में भोजन के पश्चात् आइसक्रीम और ठण्डे पेय पीने को जो प्रचलन है, वह स्वास्थ्य के लिये बहुत हानिकारक होता है।

गर्मी स्वयं एक प्रकार की ऊर्जा है और शारीरिक गतिविधियों में उसका व्यय होता है। अतः जब कभी हम थकान अथवा कमजोरी का अनुभव करते हैं तब गरम पीने योग्य पानी पीने से शरीर में स्फूर्ति आती है। जिन व्यक्तियों को लगातार अधिक बोलने का अर्थात् भाषण अथवा प्रवचन देने का कार्य पड़ता है, जब वे थकान अनुभव करें, तब ऐसा पानी पीने से पुनः ऊर्जा का प्रवाह सक्रिय हो जाता है। लम्बी तपस्या करने वालों के लिये ऐसा पानी विशेष उपयोगी होता है, जिससे शक्ति का संचार होता है। गरम पानी कफ एवं सर्दी संबंधी रोगों में क्षीण ऊर्जा को पुनः प्राप्त करने का सरलतम उपाय होता हैं।

गरम पानी पीने से पेट में भारीपन, खट्टी डकारें आना, पेट की जलन तथा पाचन सुधरता है और उपरोक्त रोगों में राहत मिलती है। गरम जल सुखी खांसी की प्रभावशाली औषधि है। सहनीय एक गिलास गर्म जल में थोड़ा सेंधा नमक डालकर पीने से कफ पतला हो जाता है और अंत में खांसी का वेग बहुत कम हो जाता है। खाली पेट गर्म पानी पीने से मूत्र का अवरोध दूर हो जाता है। हृदय की जलन कम होती है। जिनके मूत्र पीला अथवा लाल आता हो, मूत्र नली में जलन हो, उनको गर्म जल पीने से लाभ होता है।

पानी की दवा कैसे बनाएँ?

पानी विभिन्न प्रकार की ऊर्जाओं को सरलता से अपने अन्दर समाहित कर लेता है। अतः आजकल विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों में पानी में आवश्यक ऊर्जा संचित कर रोगी को देने से उपचार को प्रभावशाली बनाया जा सकता है। शरीर में जिस रंग की आवश्यकता होती है, उस रंग की कांच की बोतल या बर्तन में पानी को निश्चित विधि तथा धूप में रखने से पानी में उस रंग के गुण आ जाते हैं। चुम्बक पर पानी को रखने से पानी चुम्बकीय ऊर्जा वाला बन जाता है। इसी प्रकार पिरामीड के अन्दर अथवा पिरामीड के ऊपर रखने से पानी में स्वास्थ्यवर्धक गुण उत्पन्न हो जाते हैं। पानी को रेकी, रत्नों, मंत्रों, विभिन्न प्रकार के रंगों के प्रकाश, अलग-अलग धातु के सम्पर्क में रखने से पिरामीड, रंग, रेकी, रत्न, मंत्रों की तरंगों के प्रभाव से पानी में उनसे संबंधित गुणों का समावेश हो जाता है। उस पानी को विभिन्न पद्धतियों के चिकित्सक उपचार हेतु दवा के रूप में उपयोग में लेने का परामर्श देते हैं। पानी को जैसे बर्तन अथवा धातु के सम्पर्क में रखा जाता है, उसमें उस धातु के गुण उत्पन्न होने लगते हैं। प्रत्येक धातु का स्वास्थ्य की दृष्टि से अपना अलग-अलग प्रभाव होता है। सोने से ऊर्जित जल पीने से श्वसन प्रणाली के रोग, जैसे-दमा, श्वास फूलना, फेंफड़ों संबंधी रोगों, हृदय और मस्तिष्क संबंधी रोगों में लाभ होता है। चांदी से पाचन क्रिया के अवयवों, जैसे-आमाशय, लीवर, पित्ताशय, आंतों के अनेक रोगों एवं मूत्र प्रणाली के रोगों में आराम मिलता है। तांबे में ऊर्जित जल सेवन से जोड़ों के रोग, पोलियो, कुष्ठरोग, रक्तचाप, घुटनों का दर्द, मानसिक तनाव आदि में काफी लाभ होता है। स्नायु संस्थान शक्तिशाली होता है। इसी कारण पीने के पानी को प्लास्टिक के बर्तनों में संग्रह नहीं करना चाहिए क्योंकि उसमें हानिकारक रसायनों के प्रभाव की संभावना रहती है।

सारांश यही है कि पानी के विवेकपूर्ण एवं आवश्यकतानुसार सही उपयोग से हम स्वस्थ जीवन जी सकते हैं, रोगों से बच सकते हैं, तथा रोग होने की स्थिति में पुनः स्वस्थ हो सकते हैं।

खिंचाव (कपिंग) चिकित्सा

शरीर में बहुत सी मांसपेशियाँ ऐसी होती है, जिनका हलन-चलन इच्छानुसार करना आसान नहीं होता है। ऐसी मांसपेशियों पर हल्का-हल्का मसाज कर विकारों को हटाया जा सकता है। उन विकारों को दूर करने का एक अन्य सरल तरिका और भी है, जो खिंचाव (Suction) के सिद्धान्त पर आधारित होता है। टेनिस की गेंद के

दो बराबर भाग करने से कप के आकार के दो भाग हो जाते हैं। उपचार हेतु ऐसे कपों का प्रयोग करने से उपचार की इस विधि को कपिंग चिकित्सा भी कहते हैं।

किसी भी स्थान की सफाई करने के लिए प्राय: आंगन पर झाड़ू लगाया जाता है। विशेष अवसरों पर अधिक स्वच्छता हेतु आंगन को पानी, साबुन अथवा अन्य रसायनों द्वारा स्वच्छ किया जाता है। परन्तु जहाँ ऐसा करना संभव नहीं होता, वहाँ वायु के दबाव द्वारा सफाई की जाती है। परन्तु आँगन पर बिछे गलीचे, फेल्ट, दरी आदि पर जमीं धूल को हटाने के लिये आजकल वेक्यूम क्लीनर से खिंचाव द्वारा मिट्टी को दूर किया जाता है। इसी प्रकार जिन मांसपेशियों पर विकार जमा हो जाते हैं, वहाँ गेंद के कपों को त्वचा पर रख, दबाने से उनके अन्दर की वायु निकल जाती है। कप के अन्दर शून्यता हो जाने से कप त्वचा पर चिपक खिंचाव पैदा करने लगता है। उस स्थान पर खिंचाव बढ़ने से प्राण ऊर्जा और रक्त का प्रवाह बढ़ने लगता है। अवरोध के कारण रक्त वाहिनियाँ जो सिकुड़ जाती है, पुन: फैलने लगती है। परिणाम स्वरूप विजातीय तत्त्व उस स्थान से दूर होने लगते हैं और रोगी स्वस्थ होने लगता है।

कमर, सीना, घुटनों, हाथ-पैर, एवं अन्य मांसपेशियों सम्बन्धी रोगों में यह उपचार बहुत प्रभावशाली एवं शीघ्र राहत दिलाता है। मेरु दण्ड सम्बन्धी रोग विशेष कर स्लीप डिस्क एवं साईटिका में बहुत लाभदायक होता है। वात संबंधी रोगों में कपिंग उपचार से शीघ्र आराम मिलने लगता है। फंसी हुई वायु अथवा गैस शीघ्र अपना स्थान छोड़ देती है। वात रोगों में कप द्वार खिंचाव, रोगी को प्राय अच्छा लगता है। जो विजातीय तत्त्व दबाव और मसाज द्वारा दूर नहीं होते हैं, उन्हें दूर करने में खिंचाव से अच्छे परिणाम आते हैं।

सीने पर इस प्रयोग से फेंफड़े मजबूत होते हैं। उन पर जमा कफ दूर होने लगता है। हृदय और डायाफ्राम की कार्यक्षमता बढ़ती है। खिंचाव उतना ही देना चाहिए जो सहनीय हों। प्रारम्भ में 10 मिनट तक कप लगाकर उसके प्रभाव का अनुभव करना चाहिए। जिसे धीरे-धीरे बढ़ाया भी जा सकता है। आवश्यकतानुसार इस प्रक्रिया को कुछ समय के पश्चात् पुन: पुन: दोहराया भी जा सकता है।

शरीर के कोमल अंगों अथवा बहुत छोटे बच्चों जिनकी त्वचा अधिक कोमल होती है, कपिंग उपचार जहाँ तक हो नहीं करना चाहिए। अल्सर, घाव, चोट एवं फ्रेक्चर के समय, उन स्थानों पर कप नहीं लगाना चाहिए।

सावधानियाँ :-

कोई भी उपचार करते समय रोगी की अवस्था एवं उपचार से होने वाली प्रतिक्रिया का विवेक एवं सजगता पूर्वक ध्यान आवश्यक होता है। उसके अभाव में उपचार से अपेक्षित परिणाम नहीं मिलते। उपचार करते समय रोगी को उपचार का सिद्धान्त समझाने से उसका आत्मविश्वास, श्रद्धा और सजगता बढ़ जाती है और उपचार अधिक प्रभावशाली बन जाता है। अश्रद्धा और अनचाहा जबरदस्ती किया गया उपचार अपेक्षित परिणाम नहीं दे सकता। त्वचा पर कप लगाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उस स्थान पर बाल न हों। बाल होने से कप में वायु की शून्यता नहीं हो सकती। फलत: कप आवश्यक खिंचाव पैदा नहीं कर सकता। अत: बाल साफ करना आवश्यक होता है अथवा जहाँ मामूली बाल हो उस स्थान पर पानी, लगाना चाहिये ताकि कप में शून्यता की जा सके।

उपचार के पश्चात कप को हटाने हेतु कप पर ताकत से सीधा खिंचाव नहीं देना चाहिए। परन्तु कप के चारों तरफ के पास वाली त्वचा को दबाने से कप में वायु चली जाती है और अन्दर शून्यता समाप्त होने से कप से त्वचा का खिंचाव स्वतः समाप्त हो जाता है और कप वहाँ से स्वतः हट जाते हैं।

खिंचाव के अन्य उपकरण :-

आजकल इसी सिद्धान्त पर आधारित अनेक उपकरण बाजार में उपलब्ध हैं। जैसे स्तन पम्प, आर्गन डेवलेपर, कटोरी के आकार के वेक्यूम कप इत्यादि। जिनसे आवश्यकतानुसार नियंत्रित खिंचाव दिया जा सकता है। जिन रोंगियों के शरीर पर चर्बी अधिक होती है, उन स्थानों पर इन उपकरणों का उपयोग विशेष प्रभावशाली होता है। नाभि का स्पन्दन अपने केन्द्र में लाने के लिये भी इसी प्रक्रिया से उपचार किया जाता है।

मुद्रा चिकित्सा

शरीर की संरचना में आकाश, वायु, अग्नि, पृथ्वी, जल आदि पांच महाभूत तत्त्वों की अहं भूमिका होती है। शरीर के प्रत्येक भाग में ये पांचों तत्त्व होते हैं, फिर भी अलग-अलग भागों में इन पांचों तत्त्वों का अनुपात अलग-अलग होता है। पंच तत्त्वों के आवश्यक अनुपात के असंतुलन से रोग और संतुलन से शरीर में आरोग्य की प्राप्ति होती है।

पृथ्वी तत्त्वः- शरीर में ठोस अवयव होते हैं उनमें पृथ्वी तत्त्व अपेक्षाकृत अधिक होते हैं। जैसे हड्डियां, मांसपेशियां, त्वचा, नाखून, बाल इत्यादि। पगथली से लेकर गुदा तक शरीर में पृथ्वी तत्त्व अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय होता है। अतः शरीर के इस भाग के रोगों में पृथ्वी तत्त्व के असंतुलन की संभावनाएँ अधिक रहती है।

जल तत्त्वः- शरीर में जितने तरल पदार्थ होते हैं, जैसे रक्त, वीर्य, लार, लासिका, पसीना, आंसू, थूक, मल, मूत्र, मज्जा आदि का जल तत्त्व से विशेष संबंध होता है। शरीर के गुदा से लेकर नाभि तक के भाग में जल तत्त्व अपेक्षाकृत अधिक होता है। अतः इस भाग से संबंधित अंगों के रोगों में जल तत्त्व की प्रायः अहं भूमिका होती है।

अग्नि तत्त्वः- अग्नि तत्त्व शरीर के तापक्रम को स्थिर रखने, अंगों को सक्रिय रखने, शरीर के आभा मंडल तथा स्वभाव पर नियन्त्रण रखता है। इसकी अधिकता से बुखार, शरीर में जलन, पित्त का बढ़ना, भूख और प्यास ज्यादा लगना, क्रोध अधिक आना, भोग की इच्छा होना जैसे लक्षण प्रकट होने लगते हैं। इसके असंतुलन से भूख और प्यास बराबर नहीं लगती। स्वभाव में चिड़चिड़ापन, शारीरिक ताकत में बदलाव, आंखों का तेज कम होने लगता है। शरीर में नाभि से लेकर हृदय तक के भागों में यह तत्त्व अपेक्षाकृत अधिक होता है।

वायु तत्त्वः- शरीर में गति संबंधी प्रत्येक कार्य में इस तत्त्व का विशेष योगदान होता है। जैसे श्वसन, हलन-चलन, चिंतन-मनन, सिकुड़ना-फैलाना, रक्त एवं लासिका प्रवाह, मल-मूत्र एवं अन्य विजातीय तत्त्वों के विसर्जन, धारण करना, फेंकना इत्यादि। शरीर में हृदय से लेकर कंठ तक वायु तत्त्व अपेक्षाकृत अधिक होता है।

आकाश तत्त्वः- आकाश तत्त्व चारों तत्त्वों को स्थान देता है। हमारे शरीर में पांचों (आंख, कान, नाक, जीभ, स्पर्श) ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से जो ग्रहण किया जाता है, उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप जो कुछ होता है उसका संबंध इस तत्त्व से होता है। जैसे काम, क्रोध, मोह, लोभ, लज्जा इत्यादि।

सभी दुष्प्रवृत्तियों, शारीरिक आवश्यकताओं और रोग संबंधी अवयवों के असंतुलन को संबंधित महाभूत तत्त्व को संतुलित कर आसानी से दूर किया जा सकता है। जिससे व्यक्ति रोग मुक्त, सजग बन सुखी जीवन जीते हुये अपने उच्चतम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

मुद्राओं द्वारा पंच तत्त्वों का संतुलनः- हस्त योग मुद्राओं द्वारा पंच तत्त्वों को सरलता से संतुलित किया जा सकता है। ये मुद्राएँ शरीर में चेतना के शक्ति केन्द्रों में रिमोट कण्ट्रोल के समान स्वास्थ्य रक्षा और रोग निवारण करने में प्रभावशाली कार्य करती है। जिससे मानव भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति की तरफ अग्रसर होता है।

मुद्रा विज्ञान :- हाथ की पाँचों अंगुलियों का सम्बन्ध पंच महाभूत तत्त्वों से होता है। प्रत्येक अंगुली अलग-अलग तत्त्व का प्रतिनिधित्व करती है। जैसे- कनिष्ठिका जल तत्त्व से, अनामिका, पृथ्वी तत्त्व से, मध्यमा अग्नि तत्त्व से, तर्जनी वायु तत्त्व से और अंगुठा आकाश तत्त्व से। परन्तु बहुत से योगी अंगूठे को अग्नि और मध्यमा को आकाश तत्त्व का प्रतीक मानते हैं। परन्तु ऐसा इसलिए उचित नहीं लगता क्योंकि आकाश तत्त्व ही सभी तत्त्वों को आश्रय देता है, उसके सहयोग के बिना किसी भी तत्त्व का अस्तित्त्व नहीं रहता।

मुद्रा विज्ञान के अनुसार हमारी अंगुलियाँ ऊर्जा का नियमित स्रोत होने के साथ-साथ एन्टीना का कार्य भी करती है। शरीर में पंच तत्त्वों की घटत-बढ़त से व्याधियाँ होती हैं। अंगुलियों एवं अंगूठे को मिलाने, दबाने, स्पर्श करने, मोंड़ने तथा विशेष आकृति में कुछ समय तक बनाए रखने से शरीर में तत्त्वों के अनुपात में परिवर्तन किया जा सकता है। उसका स्नायु मण्डल और यौगिक चक्रों पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है।

अंगूठे को तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका के मूल में लगाने से उस अंगुलि से सम्बन्धित तत्त्व की विशेष वृद्धि होती है। अंगुलियों के प्रथम पौर में स्पर्श करने से तत्त्व सन्तुलित होता है तथा इन अंगुलियों को मोड़ कर अंगूठे के मूल पर स्पर्श कर अंगूठे से दबाने से उस तत्त्व की कमी होती है। इस प्रकार विभिन्न मुद्राओं के माध्यम से पंच तत्त्वों को इच्छानुसार घटाया अथवा बढ़ाकर संतुलित किया जा सकता है। हथेली में अंगुलियों एवं अंगूठों की अलग स्थितियों द्वारा अलग-अलग मुद्राऐं बनती है, जो पंच तत्त्वों को संतुलित कर साधक को स्वस्थ रखने में सहयोग करती है।

चन्द उपयोगी मुदाएँ

ज्ञान मुद्राः- अंगुष्ठ व तर्जनी के ऊपरी पौर के स्पर्श करने से जहाँ हल्का सा नाड़ी स्पन्दन हो, ज्ञान मुद्रा बनती है। इस मुद्रा से स्मरण शक्ति तेज होती है, एकाग्रता बढ़ती है और बुद्धि निर्मल एवं मन नियन्त्रित होता है। आज्ञा चक्र सक्रिय होने से शरीर में हारमोनस का संतुलन एवं सभी अन्तःश्रावी ग्रन्थियों की सक्रियता बढ़ने लगती है। परिणामस्वरूप सभी कार्य व्यवस्थित होने लगते हैं।

वायु मुद्राः- अंगुष्ठ से तर्जनी को दबाने से वायु मुद्रा बनती है जो शरीर में वायु के बढ़ने से होने वाले वात रोगों का शमन करती है, जैसे शरीर में कम्पन्न होना, जोड़ों का दर्द, गंठिया, रीढ़ की हड्डी संबंधी दर्द, वात रोग, लकवा आदि के समय इस मुद्रा को करने से रोगों में राहत मिलती है।

आकाश मुद्रा :- अंगुष्ठ के ऊपरी पौर को मध्यमा के ऊपरी पौर से स्पर्श करने से आकाश मुद्रा बनती है। इससे अग्नि तत्त्व संतुलित होता है। हड्डियां मजबूत होती है। मुख का तेज ओर कान्ति सुधरती है। विचार क्षमता बढती है। श्रवण शक्ति ठीक रहती है एवं कान के रोग ठीक होते हैं। मानसिक संकीर्णता कम होती है। हृदय रोग में भी यह मुद्रा प्रभावकारी होती है। मानसिक एवं शारीरिक विकलांगता के लिए यह मुद्रा बहुत अच्छी है।

शून्य मुद्रा :- मध्यमा के ऊपरी पौर को अंगुष्ठ के मूल पर स्पर्श कर अंगुष्ठ से दबाकर बाकी अंगुलियाँ सीधी रखने से बनती है। इस मुद्रा से शरीर में मणिपुर चक्र से विशुद्धि चक्र तक के सभी चक्र प्रभावित होते हैं। बहरापन, गले के रोग,कान का दर्द, हिचकी, गूंगापन, सिर दर्द,

विचार एवं शारीरिक शून्यता दूर होती है। काम वासना नियन्त्रित होती है। मूत्रावरोध दूर होता है। रक्त संचार सुधरता है।

पृथ्वी मुद्रा :- अंगुष्ठ को अनामिका के ऊपरी पौर से स्पर्श से यह मुद्रा बनती है। पृथ्वी तत्त्व सन्तुलित होने से शरीर की ताकत और पैरों की शक्ति बढ़ती है। हड्डियां एवं मांसपेशियां शक्तिशाली होती है। रक्त की कमी दूर होती है। नाभि के आसपास स्थित प्राय: सभी अंगों से संबंधित रोगों में लाभ होता है। भूख नियन्त्रित होती है।

सूर्य मुद्रा :- अनामिका के ऊपरी पौर को अँगूठे के मूल पर रख कर अंगूठे से दबाने पर य ह मुद्रा बनती है। इस मुद्रा से मोटापा व भारीपन घटता है। मानसिक तनाव में कमी आती है। सर्दी एवं जल तत्त्व की अधिकता वाले उल्टियें, दस्तें संबंधित रोग ठीक होते हैं। नेत्र ज्योति बढ़ती है और प्रारम्भिक स्तर का मोतिया बिन्द भी ठीक होता है। पाचन क्रिया ठीक होती है जिससे कोलस्ट्रोल भी कम होता है।

जल मुद्रा (वरुण मुद्रा) :- अंगुष्ठ का कनिष्ठ अंगुलि के ऊपरी पौर पर स्पर्श करने से यह मुद्रा बनती है। कनिष्ठिका जो शरीर में जल तत्त्व का संतुलन करती है। जल तत्त्व की कमी से होने वाले रोगों में जैसे- मांसपेशियों में खिचांव, चर्म रोग, शरीर में रुक्षता आदि ठीक होते हैं। रक्त शुद्धि और त्वचा में स्निग्धता लाने के लिए वरुण मुद्रा लाभदायक होती है। लू नहीं लगती। बाईटों (Cramps) में इस मुद्रा से तुरन्त आराम मिलता है। आकस्मिक दुर्घटना में इस मुद्रा से चमत्कारी लाभ होता है।

जलोदर नाशक मुद्रा :- कनिष्ठिका को पहले अंगूठे की जड़ से लगा कर फिर अंगूठे से कनिष्ठिका को दबाने से जलोदर नाशक मुद्रा बनती है। इस मुद्रा से शरीर से जल की वृद्धि से होने वाले रोग ठीक होते हैं। जैसे फेफड़ों अथवा पेट में पानी भरना, शरीर के किसी भाग में सूजन, नाक से पानी आना, आंखों से पानी आना, मुंह से लार टपकना आदि। इस मुद्रा को करने से शरीर के विजातीय द्रव्य बाहर निकलने लगते है, जिससे शरीर निर्मल बनता है, पसीना आता है, मूत्रावरोध ठीक होता है।

प्राण मुद्रा :- कनिष्ठिका और अनामिका के ऊपरी पौर को अंगूठे के ऊपरी पौर से स्पर्श करने से यह मुद्रा बनती है, जो जल और पृथ्वी तत्त्व को शरीर में सन्तुलन करने में सहयोग करती है। इस मुद्रा से चेतना शक्ति जागृत होती है। शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। भूख प्यास सहन हो जाती है। रक्त संचार सुधरता है। आँखों के रोगों में राहत मिलती है। नेत्र ज्योति सुधरती है। हस्त रेखा विज्ञान के अनुसार सूर्य की अंगुलि अनामिका समस्त प्राणशक्ति का केन्द्र मानी जाती है। बुद्ध की अंगुलि कनिष्ठिका युवा शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है। अत: इस मुद्रा के अभ्यास से शरीर में प्राण शक्ति का संचार तेज होता हैं रक्त संचार ठीक होने से रक्त नलिकाओं का अवरोध दूर होता है। साधक को भूख प्यास की तीव्रता नहीं सताती। थकावट दूर होती है। वाक् शक्ति सुधरती है।

अपान मुद्रा :- मध्यमा और अनामिका अंगुली के सिरे को अंगूठे के सिरे से स्पर्श करने से बनती है। इस मुद्रा से शरीर से विभिन्न प्रकार के विजातीय तत्त्वों की विसर्जन क्रिया नियमित होती है, ताकि अनावश्यक, अनुपयोगी पदार्थ सरलता पूर्वक शरीर से बाहर निकल जाते हैं।

इससे पेट में वायु का नियन्त्रण होने से पेट संबंधी वात रोगों में विशेष लाभ होता है। इस मुद्रा से मूत्राशय की कार्य प्रणाली सुधरती है। गुर्दो के रोग, कब्ज और बवासीर में यह मुद्रा विशेष लाभ दायक

होती है। यह मुद्रा दांतों को भी स्वस्थ रखती है। इस मुद्रा से पसीना नियमित ढंग से आने लगता है। शरीर में प्राण और अपान वायु संतुलित होती है।

व्यान मुद्राः- अंगुठा, तर्जनी और मध्यमा के अग्र भाग को स्पर्श कर शेष दोनों अंगुलियां सीधी रखने से बनती है। इस मुद्रा से वात, पित्त और कफ का संतुलन होता है। उच्च एवं निम्न रक्त चाप में विशेष तथा हृदय रोग में लाभ होता है।

उदान मुद्राः- अंगुठा, तर्जनी, मध्यमा एवं अनामिका के अग्र भाग को मिलाने से यह मुद्रा बनती है। इस मुद्रा से गले संबंधी रोग दूर होते हैं। स्मरण शक्ति एवं सजगता विकसित होती है। मानसिक शांति एवं स्थिरता बढ़ती है।

समान मुद्राः- अंगूठे एवं हथेली की चारों अंगुलियों के अग्र भाग को मिलाने से यह मुद्रा बनती है। इस मुद्रा से पांचों तत्त्वों का संतुलन होता है। दर्दस्थ एवं शरीर के कमजोर भाग पर यह मुद्रा बना अंगुलियों का स्पर्श करने से दर्द में आराम तथा निष्क्रिय भाग सक्रिय होने लगता है। इस मुद्रा से शरीर, मन और बुद्धि में अच्छा तालमेल रहने लगता है।

अपान वायु मुद्रा :- इस मुद्रा को मृत संजीवनी मुद्रा भी कहते है। तर्जनी को अंगुष्ठ के मूल से स्पर्श कर अंगूठे का अग्रभाग मध्यमा और अनामिका के ऊपरी पौर से स्पर्श करने व कनिष्ठिका को सीधी रखने से बनती है। इस मुद्रा से हृदयघात, हृदय रोग, हृदय की कमजोरी धड़कन, प्राण ऊर्जा की कमी, उच्च रक्त चाप, सिर दर्द, बैचेनी, पेट की गैस, घबराहट दूर होती है। दिल का दौरा पड़ने पर यह मुद्रा इंजेक्शन के समान तुरन्त प्रभाव दिखलाती है। हृदय के रोगियों को सीढ़िया चढ़ते समय यदि श्वास फूलता हो तो सीढ़िया चढ़ने से पूर्व 10-15 मिनट इस मुद्रा को करने से श्वास नहीं फूलता। हिचकी, दमा एवं दांतों के दर्द में आराम मिलता है। भोजन करते समय यदि भोजन का अंश श्वास नली में चला जाए तो तुरन्त राहत दिलाती है।

शंख मुद्रा :- बांये हाथ के अंगूठे को दांये हाथ की मुट्ठी में बन्द कर बांये हाथ की तर्जनी को दाहिने हाथ के अँगूठे से मिला, बाकी तीनों अंगुलियों को मुट्ठी के ऊपर रखने से शंख मुद्रा बनती है।

इस मुद्रा से वाणी संबंधी रोग जैसे तुतलाना, आवाज में भारीपन, गले के रोग और थायरायड संबंधी रोगों में विशेष लाभ होता है। भूख अच्छी लगती है। वज्रासन में बैठकर यह मुद्रा करने से अधिक प्रभावकारी हो जाती है। हृदय के पास इस मुद्रा को हथेलियाँ रख कर करने से हृदय रोग में शीघ्र लाभ होता है। रक्त चाप कम होने लगता है।

लिंग मुद्रा :- दोनों हाथों की अंगुलियों को आपस में फंसाकर दायें अंगूठे को ऊपर खड़ा रखने से यह मुद्रा बनती है। इस मुद्रा से शरीर में गर्मी बढ़ती है। मोटापा कम होता है। कफ, नजला, जुकाम, खांसी, सर्दी संबंधी रोगों, फेंफड़ों के रोग, निम्न रक्तचाप आदि में कमी, होती है। इस मुद्रा से शरीर में मौसम परिवर्तन से होने वाले सर्दी जन्य रोगों में शीघ्र राहत मिलती है तथा शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।

प्रभावशाली नमस्कार मुद्रा

दोनों हाथों की हथेलियों की पाँचों अंगुलियों से कोहनी तक के भाग को स्पर्श करने से नमस्कार मुद्रा बनती है। **हथेली में सुजोक एवं हैण्ड रिफ्लेक्सोलॉजी एक्यूप्रेशर के सिद्धान्तानुसार शरीर के प्रत्येक भाग के प्रतिवेदन बिन्दु होते हैं और जब दोनों हथेलियों को मिलाते हैं तो हथेली के चारों तरफ का आभा मंडल संतुलित**

होने लगता है, जिससे सभी अंगों में प्राण ऊर्जा का प्रवाह संतुलित होने लगता है, आवेग शांत होने लगते हैं। मन की चंचलता शांत होती है, श्वास की गति मंद हो जाती है। जिससे अहं का विसर्जन एवं क्रोध शांत होता है। सकारात्मक सोच विकसित होने लगती है। इसी कारण हमारे यहाँ एक लोकोक्ति है- ''हाथ जोड़ो - गुस्सा छोड़ो'' अर्थात् हाथ जोड़कर क्रोध नहीं किया जा सकता।

दोनों हाथों को मिलाने से चन्द्र और सूर्य स्वर सम होने लगता है और सुषुन्ना स्वर चलने लगता है। सिद्धान्तानुसार फलतः वात, कफ और पित्त आदि विकारों पर अंकुश लगने लगता है। आयुर्वेद के अनुसार वात-कफ एवं पित्त के असंतुलन से ही रोगों की उत्पति होती हैं।

ज्योतिष में रेखा विज्ञान के अनुसार हथेली में व्यक्तिके सम्पूर्ण ग्रहों की स्थिति होती है। हस्त रेखा विशेषज्ञ हथेली का आकार एवं विभिन्न रेखाओं की स्थिति देखकर मनुष्य के जीवन में घटित होने वाली घटनाओं को बताने में सक्षम होते हैं। जब दोनों हथेलियों को आपस में मिलाते हैं तो अशुभ ग्रहों का प्रभाव कम होने लगता है। हथेली की अंगुलियों में तरह-तरह के रत्न एवं विशिष्ट पत्थर अंगूठियों में पहनने से रत्न चिकित्सा के सिद्धान्तानुसार उन रत्नों की तरंगों का प्रभाव सभी स्तर पर पड़ने लगता है। जिससे न केवल रोगों का उपचार होता है अपितु प्रतिकूल ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति को भी नियन्त्रित किया जा सकता है।

हथेली की पाँचों अंगुलियाँ पंच महाभूत तत्त्वों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) का प्रतिनिधित्व करती है। अतः नमस्कार मुद्रा से बायें-दायें पंच तत्त्वों का संतुलन होने लगता है। पंच तत्त्वों का असंतुलन ही अधिकांश रोगों का मूल कारण होता है। मुद्रा-साधक हाथों की अंगुलियों और अंगूठों को अलग-अलग ढंग से आपस में निश्चित समय तक स्पर्श कर पंच महाभूत तत्त्वों को संतुलित कर विभिन्न रोगों का उपचार करते हैं।

धातु विशेषज्ञ अलग-अलग ग्रहों की शांति के लिए हथेली की अंगुलियों में सोने, चाँदी, तांबें, लोहे जैसी अलग-अलग धातुओं की बनी अंगूठियों में अलग-अलग रत्नों को पहनने पर जोर देते हैं।

नाखूनों की बनावट एवं उनके रंगों के आधार पर मनुष्य के स्वभाव के बारे में जाना जा सकता है।

नमस्कार मुद्रा से पिरामिड का आकार बनता है जिससे डायाफ्राम के ऊपर का भाग ऊर्जा का सक्रिय क्षेत्र बनने लगता है। आभा मण्डल शुद्ध होने लगता है। अशुभ सोच शुभ में बदलने लगती है।

चीनी पंच तत्त्व सिद्धान्तानुसार हृदय, फेंफड़े, पेरीकार्डियन (मस्तिष्क) मेरेडियन एवं उसके सहयोगी पूरक अंग छोटी आंत, बड़ी आंत, ट्रिपल वार्मर (मेरुदण्ड) की पाँच प्रमुख ऊजाओं (वायु, ताप, नमी, शुष्कता एवं ठण्डक) के मुख्य प्रतिवेदन बिन्दु हथेली और कोहनी के बीच होते हैं। मेरेडियन की दायें और बायें शरीर में समान स्थिति होने से उनमें प्रवाहित ऊर्जाओं का असंतुलन रोगों का मुख्य कारण होता है। परन्तु नमस्कार मुद्रा द्वारा जब दोनों हथेलियों से कोहनी तक के भाग को आपस में मिलाया जाता है तो इन मेरेडियनों में पाँचों ऊर्जाओं का संतुलन होने लगता है। परिणामस्वरूप शरीर में दायें-बायें संतुलन होने लगता है। रक्तचाप सामान्य हो जाता है। श्वसन तंत्र बराबर कार्य करने लगता है। इस मुद्रा से डायाफ्राम के ऊपर स्थित हृदय, फेंफड़े और मस्तिष्क संबंधी सभी रोगों में विशेष लाभ होता है। हाथों एवं कंधों के रोगों में इस मुद्रा के विशेष चमत्कारिक परिणाम आते हैं।

हथेली की अंगुलियों में प्राण ऊर्जा का विशेष प्रवाह होता हैं। इसी कारण रेकी, प्राणिक हीलिंग द्वारा उपचार एवं आशीर्वाद हथेली से ही दिया जाता है। आभा मंडल के फोटोग्राफ्स से इसे स्पष्ट देखा जा सकता है।

वैसे तो अधिकांश मुद्राओं को लगभग 48 मिनट करने से पूर्ण लाभ प्राप्त होता है। रोग की अवस्था में साधारण लगने वाली इस मुद्रा के करने के चन्द मिनटों पश्चात् कोहनी से कंधों के बीच रोग की स्थितिनुसार दर्द

होने लगता है। अतः प्रारम्भ में अभ्यास के रूप में जितनी देर दर्द सहन कर सकें उतना ही करें एवं अभ्यास के पश्चात् धीरे-धीरे समय को बढ़ाया जा सकता है। जब तक पूर्ण अभ्यास न हो, थोड़े-थोड़े अन्तराल में इस मुद्रा को पुनः पुनः किया जा सकता है। इस मुद्रा में गर्दन को बायें, दायें, ऊपर कर, शरीर को अलग-अलग स्थिति में मोड़कर कुछ देर तक करने से कंधों, हाथों एवं डायाफ्राम के ऊपर वाले भाग में प्राण ऊर्जा के अवरोध के अनुरूप तनाव आता है। जितना तनाव सहन किया जा सके उतने समय तक ही नमस्कार मुद्रा करनी चाहिए। शरीर के दाहिने एवं बायें भाग की हृदय,फेंफड़े, पेरीकार्डियन मेरेडियन में प्राण ऊर्जा का प्रवाह संतुलित होने लगता है जिससे उत्पन्न तनाव दूर होते हैं। वापस साधारण स्थिति में आते ही, तनावग्रस्त भाग में रक्त का प्रवाह ठीक होने लगता है। संबंधित मांसपेशियों में लचीलापन बढ़ने लगता है। दर्दस्थ और कंधों से मांसपेशियों से संबंधित हाथ संबंधित एक्यूप्रेशर प्रतिवेदन बिन्दुओं पर दबाव दिया जाये या दाणा मेथी टेप पर चिपका कर उस सीान पर लगा दी जाये या खिंचाव के कप कुछ देर लगाए जाए अथवा साधारण या चुम्बकीय मसाज और अन्य संबंधित उपचार किया जाये तो दर्दस्थ भाग से दर्द कम होने लगता है और पुराने असाध्य रोगों में शीघ्र राहत होने लगती है।

गोदुहासन में नमस्कार मुद्राः-

दोनों घुटनों को मिलाकर पंजों पर बैठने की स्थिति को गोदुहासन कहते हैं। पैर की अंगुलियाँ और अंगूठा

स्वनियन्त्रित नाड़ी संस्थान को नियन्त्रित करते हैं। **इस आसन में बैठने से मेरुदण्ड प्रायः सीधा रहता है। नाड़ी संस्थान पर दबाव पड़ने से उससे संबंधित असंतुलन दूर होता है और नाड़ी संबंधी सभी रोगों में आराम मिलता है। कमर, घुटनों, पैरों तथा गर्दन संबंधी सभी रोगों में इस आसन से लाभ होता है। गोदुहासन से पैर, रीढ़, कंधों का संतुलन ठीक होता है और मानसिक एकाग्रता बढ़ती है।** भगवान् महावीर को केवलज्ञान इसी आसन में ध्यान करते हुए हुआ। इस आसन का अभ्यास भी धीरे-धीरे बढ़ाया जा सकता है। इस आसन में नमस्कार मुद्रा करने से सभी रोगों का उपचार और अधिक प्रभावशाली हो जाता है।

नमस्कार मुद्रा में नमस्कार मंत्र के उच्चारण से उपचार अत्यधिक प्रभावशाली-

मंत्र में चयनित शब्दों के समूह का ध्वनि की तरंगों की निश्चित गति एवं ताल के साथ उच्चारण होता है, जिससे विशेष प्रकार की ऊर्जा का प्रवाह होता है। मंत्रोच्चारण से आभा-मंडल शुद्ध होता है। फलतः मन, मस्तिष्क एवं शरीर के विकार दूर होने लगते हैं। मंत्र न केवल स्थूल, अपितु सूक्ष्म शरीर को भी प्रभावित करता है।

शरीर में ऊर्जा चक्रों की ऊर्जा के प्रवाह में आए हुए अवरोध मंत्र की तरंगों से दूर होने लगते हैं। नाभि से मस्तिष्क में णमों की ध्वनि के कंपन से मृत प्रायः कोशिकाएँ पुर्नजिवित होने लगती है। नई कोशिकाओं के निर्माण की गति बढ़ जाती है। रक्तप्रवाह सामान्य होने लगता है। प्रायः हम अपनी क्षमताओं का एक प्रतिशत भी उपयोग नहीं करते। मंत्रोच्चारण से मस्तिष्क का निष्क्रिय भाग सक्रिय होने लगता है, जिससे हमारी प्रतिरोधक क्षमता, समझ एवं सजगता बढ़ने लगती है। 'मंत्र' शरीर और मानसिक स्वास्थ्य को अच्छा रखने का सरल आध्यात्मिक उपाय है।

समझपूर्वक मंत्रोच्चार अधिक प्रभावशाली होता है-

मंत्रोच्चार का प्रभाव व्यक्ति के श्रद्धापूर्वक उच्चारण एवं आन्तरिक उत्साह के अनुरूप होता है। मंत्रोच्चारण दिखावटी और थोपा हुआ नहीं होना चाहिए। अक्षर पौद्गालिक होते हैं उनमें स्वयं में कोई चेतना

शक्ति नहीं होती। परन्तु जब उसके साथ मन की श्रद्धा का संयोग हो जाता है तो उसमें चेतना शक्ति का प्रादुर्भाव होने लगता है। मन की एकाग्रता, निष्ठा, श्रद्धा ही मंत्र की शक्ति को जागृत करने में सर्वाधिक भूमिका निभाती है।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाण, णमो लोए सव्वसाहूणं

'णमो' विनय एवं नम्रता का प्रतीक है। पंच परमेष्ठी के पांचों पद अध्यात्म जगत में अपने लक्ष्य के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित आत्माओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। फलतः मंत्र महामंत्र बन जाता है।

इन पाँच पदों में 'णमो' के 'मो' शब्द को एवं पाँच पदों में अंतिम शब्द 'णं' को जितना लम्बा उच्चारण कर सकें, उच्चारण करें। णमो के उच्चारण के पश्चात् पूर्ण श्वास लेने के पश्चात् प्रत्येक पद का उच्चारण करें। ऐसा उच्चारण प्राणायाम का ही एक विशेष प्रकार हो जाता है।

इस विधि द्वारा उच्चारण करने से गले में स्थित थायराइड एवं पेराथायराइड ग्रन्थियाँ तथा सिर में स्थित पीयूष और पीनियल ग्रन्थियाँ सक्रिय होने लगती हैं। जिन्हें पाँचों पद याद न हों वे मात्र 'णमो अरिहंताणं' का इस विधि से जाप करने पर मंत्र चिकित्सा का लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इससे व्यक्ति की सोच सकारात्मक, मनोबल दृढ़ एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है और शरीर में सुरक्षा कवच का निर्माण होने लगता है। उच्चारण में किसी भी प्रकार की जोर जबरदस्ती नहीं करनी चाहिए। एक लय में सहज धीरे-धीरे उच्चारण को बढ़ाने का अभ्यास करना चाहिए। जितना लम्बा उच्चारण होगा, उतना ही अधिक लाभ मिलेगा। इस तरह जितनी देर कर सकें निरन्तर अभ्यास करें, परन्तु कम से कम समय बढ़ाते-बढ़ाते 15 मिनट का जाप अवश्य करना चाहिए।

नमस्कार मुद्रा एवं गोदुहासन में नमस्कार मंत्र के उच्चारण से सभी प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक रोग चन्द दिनों में ही समाप्त होने लगते हैं। स्वस्थ व्यक्ति यदि नमस्कार मुद्रा का नियमित अभ्यास करें तो हृदय, फेंफड़े एवं मस्तिष्क संबंधित अंगों में रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ने लगती है। मंत्रोच्चारण से अशुभ कर्मों की निर्जरा होती है, अतः स्वस्थ एवं रोगी कोई भी अपनी क्षमतानुसार इस आसन, मुद्रा और मंत्रोच्चारण के साथ अथवा अलग-अलग कर सकते हैं। अन्य चिकित्सा करते हुए भी इसे किया जा सकता है। जिससे वे उपचार अत्यधिक प्रभावशाली हो सकते हैं। जिनको नमस्कार मंत्र का उच्चारण करने में कठिनाई हो वे अपनी श्रद्धानुसार ओम् अथवा अल्ला हो, जैसे किसी अन्य लघु मंत्र का चयन करें। मंत्र का उच्चारण जितना लम्बा करेंगे उतना ज्यादा एवं जल्दी लाभ मिलेगा। **शरीर में डायाफ्राम से ऊपर वाले भाग हृदय, फेंफड़े, मस्तिष्क, गले, मेरुदण्ड एवं हाथों संबंधी रोगों में यह प्रक्रिया अत्यधिक प्रभावशाली होती है। दमा, खांसी, श्वास एवं हृदय रोगियों के लिए तो गोदुहासन और नमस्कार मंत्र जाप के साथ नमस्कार मुद्रा के अभ्यास से चन्द दिनों में ही संतोषजनक परिणाम आने लगते है और अधिकांश हृदय रोगी Bye-Pass को Bye-Pass कर सकते हैं।**

सारांश यही है कि नमस्कार मुद्रा में किए गए आसन, प्राणायाम, अंग-व्यायाम, ध्यान, कायोत्सर्ग, भजन, कीर्तन, जप आदि शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से अधिक प्रभावशाली हो जाते हैं एवं इसका प्रभाव तत्काल अनुभव किया जा सकता है। चाहे बालक हो या वृद्ध, संत हो या गृहस्थ, यह मुद्रा सबके लिए करणीय है। पानी पीने से प्यास और खाना खाने से भूख शांत होती है, ठीक उसी प्रकार नमस्कार मुद्रा का लाभ भी उसका अभ्यास करने वाले को ही मिल सकता है। पाठकगण इस मुद्रा का प्रयोग कर अपनी प्रतिक्रिया से अवगत करायेंगे तो जनहितकारी इस सरल मुद्रा की जानकारी जन-जन तक पहुँचाने की प्रेरणा मिलेगी।

मेथी चिकित्सा

मेथी के औषधिय गुण–

दाणा मेथी हमारे रसोइघरों में दैनिक उपयोग में आने वाली वस्तु है, जो अनेक औषधिय–गुणों से भरपूर होती है। प्राचीन काल से ही इसका प्रयोग खाद्य और औषधि के रूप में हमारे घरों में होता आ रहा है। **आयुर्वेद के ग्रन्थ भावप्रकाश में कहा गया है कि मेथी वात को शान्त करती है, कफ और ज्वर का नाश करती है। राज निघन्टु में मेथी को पित्त नाशक, भूख बढ़ाने वाली, रक्त शोधक, कफ और वात का शमन करने वाली बतलाया गया है। मेथी में प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेटस, खनिज, विटामिन, केल्शियम, फासफोरस, लोह तत्त्व, केरोटीन, थायमिन, रिवाफलेबिन, विटामिन सी आदि प्रचुर मात्रा में होते हैं। लोह तत्त्व की अधिकता के कारण मेथी रक्त की कमी वालों के लिये विशेष लाभप्रद होती है। मेथी दानों से शरीर की आन्तरिक सफाई होती है। मेथी का उबला पानी बुखार को कम करने में बहुत ही लाभप्रद होता है।**

मेथी सेवन से पाचन तंत्र सुधरता है। पेट में कर्मियों की उत्पत्ति नहीं होती। आंतों में भोजन का पाचन बराबर होता है। बड़ी आंत में, मल में कुछ गाढ़ापन आता है और मल आसानी से बड़ी आंत में गमन करने लगता हैं। मेथी खाने से भूख अच्छी लगती है। मेथी सेवन से गंध और स्वाद इन्द्रियाँ अधिक संवेदनशील होती हैं। **यह शरीर का आन्तरिक शोधन करती है। शलेष्मा को घोलती है तथा पेट और आंतों की सूजन ठीक करने में सहायक होती है। मेथी सेवन से मुंह की दुर्गन्ध दूर होती है। कफ, खांसी, इनफ्लेन्जा, निमोनिया, दमा आदि श्वसन संबंधी रोगों में लाभ होता है। गले की खराश में मेथी दाने के पानी से गरारे करने से बहुत लाभ होता है।**

मेथी सेवन की विभिन्न विधियाँ–

अलग–अलग रोगों के उपचार हेतु मेथी का प्रयोग अनेक प्रकार से किया जाता है। जैसे– मेथी दाणा भिगोंकर उसका पानी पीना, उसे अंकुरित कर खाना, उबालकर उसका पानी पीना, सब्जी बनाकर खाना, विभिन्न अचारों, सब्जियों अथवा अन्य खाद्य पदार्थों के साथ पकाकर सेवन करना, मेथी दानों को चूसना, चबाना अथवा पानी के साथ निगलना, मेथी की चाय अथवा काढ़ा बनाकर पीना, उसका पाउडर बना पानी के साथ लेना, अथवा लेप करना, मेथी की पुड़िये बनाकर खाना अथवा पकवान बनाकर उपयोग करना इत्यादि, कई तरीकों से मेथी का प्रयोग हमारे घरों में होता रहता है।

स्वयं करें मेथी स्पन्दन का अनुभव–

कागज की चिपकाने वाली टेप पर मेथी दानों को चिपका कर हथेली के अंगूठें के नाखून वाले ऊपरी पोरवे में उस टेप को लगा दें जिससे अंगूठे को मेथी का स्पर्श होता रहे। कुछ ही क्षणों में हमें उस स्थान पर स्पंदन की अनुभूति होनी प्रारम्भ हो जाती है। इससे प्रमाणित होता है कि मेथी का उसके गुणों के अनुरूप बाह्य उपयोग भी लाभप्रद हो सकता है।

मेथी स्पर्श चिकित्सा का सिद्धान्त–

शरीर में अधिकांश दर्द और अंगों की कमजोरी का कारण आयुर्वेद के सिद्धान्तानुसार प्रायः वात और कफ संबंधी विकार होते हैं। **मेथी वात और कफ का शमन करती है। अतः जिस स्थान पर मेथी का स्पर्श किया जाता है, वहाँ वात और कफ विरोधी कोशिकाओं का सृजन होने लगता हैं, शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ने लगती है। दर्द वाले अथवा कमजोर भाग में विजातीय तत्त्वों की अधिकता के कारण शरीर के उस भाग का आभा मंडल विकृत हो जाता है। मेथी अपने गुणों वाली तरंगें शरीर के उस भाग के माध्यम से अन्दर में भेजती है।**

जिसके कारण शरीर में उपस्थित विजातीय तत्त्व अपना स्थान छोड़ने लगते हैं, प्राण ऊर्जा का प्रवाह संतुलित होने लगता है। फलतः रोगी स्वस्थ होने लगता है।

मेथी रक्त शोधक है, रोगग्रस्त भाग का रक्त प्रायः पूर्ण शुद्ध नहीं होता। जिस प्रकार सोडा कपड़े की गंदगी अलग कर देता है, मेथी की तरंगे रोग ग्रस्त अथवा कमजोर भाग में शुद्ध रक्त का संचार करने में सहयोग करती है जिससे उपचार अत्यधिक प्रभावशाली हो जाता है।

मेथी का स्पर्श क्यों प्रभावशाली?

मेथी के प्रत्येक दानें में हजारों दाने उत्पन्न करने की क्षमता होती है। अतः उसके सम्पर्क से मृत प्रायः कोशिकाएँ पुनः सक्रिय होने लगती है। **मेथी के औषधिय गुणों की तरंगें कमजोर अंगों को शक्तिशाली बनाने, शरीर के दर्द वाले भाग की वेदना कम करने, जलन वाले भाग की जलन दूर करने में चमत्कारी प्रभावों वाली सिद्ध हो रही है।**

मेथी जो कार्य पेट में जाकर करती है, उससे अधिक एवं शीघ्र लाभ उसके बाह्य प्रयोग से संभव होता है, क्योंकि उससे रोगग्रस्त भाग का मेथी की तरंगों से सीधा सम्पर्क होता है। किसी भी प्रकार के दुष्प्रभाव की संभावना प्रायः नहीं रहती। रोगग्रस्त भाग को मेथी के औषधिय गुणों का पूर्ण लाभ मिलता है जबकि मेथी सेवन से रोगग्रस्त भाग तक उसका आशिंक लाभ ही मिलता है। परिणाम स्वरूप मेथी का बाह्य स्पर्श विभिन्न असाध्य स्थानीय रोगों का सहज, सरल, स्वावलंबी प्रभावशाली उपचार के रूप में विकसित हो रहा है। अनेकों रोगों के उपचार में यांत्रिक एवं रसायनिक परीक्षणों एवं अनुभवी चिकित्सकों के परामर्श की भी आवश्यकता नहीं रहती। मात्र रोगग्रस्त भाग अथवा कमजोर अंग का मेथी से स्पर्श रखना पड़ता है।

मेथी स्पर्श द्वारा विविध उपचार–

मेथी दानों को शरीर के दर्द वाले भाग पर लगाने से दर्द में तुरन्त राहत मिलती है। शरीर के कमजोर अंग पर लगाने से वह अंग पुनः सक्रिय और ताकतवर होने लगता है। जलन, सूजन, दाद, खुजली वाले स्थान पर मेथी लगाने से तुरन्त लाभ मिलता है। मेथी दानों को चूसते रहने से दांतों का दर्द ठीक होता है और गले संबंधित रोगों में आराम मिलता है। अन्तःस्रावी ग्रन्थियों एवं ऊर्जा चक्रों पर मेथी दाना लगाने से उसके आसपास जमे विकार दूर होने से उनकी सक्रियता बढ़ जाती है। हथेली और पगथली में मेथी दानों के मसाज से सारे शरीर से संबंधित एक्यूप्रेशर प्रतिवेदन बिन्दू सक्रिय होने लगते हैं। एक्यूप्रेशर के दर्दस्थ प्रतिवेदन बिन्दुओं पर मेथी स्पर्श से वहाँ जमें विजातीय तत्त्व दूर होने लगते हैं और एक्यूप्रेशर चिकित्सा बिना दर्द वाली स्वावलंबी प्रभावशाली उपचार पद्धति से हो जाता है।

1. अंगूठे के ऊपर वाले पोरवे पर मेथी लगाने से चक्कर एवं सिर दर्द संबंधी विभिन्न रोगों में तुरन्त आराम मिलता हैं। रक्तचाप बराबर होने लगता है। तनाव, भय, अधीरता, क्रोध कम होने लगता है।
2. **रात्रि में सोते समय हाथ के अंगूठों के पहले पोरवे पर मेथी लगाने से अनिद्रा के रोग से छुटकारा मिलता है।**
3. मेथी का हल्का सा मसाज सीने पर करने से फेंफड़े मजबूत होते हैं। कफ, खांसी, दमा में आराम मिलता है।
4. **हृदय रोगियों के हृदय वाले स्थान पर मेथी दाणा लगाने से हृदय शूल और हृदय संबंधी अन्य विकार शीघ्र दूर होने लगते हैं।**
5. **स्पलीन पर मेथी स्पर्श करने से मधुमेह ठीक होता है। शरीर में लासिका तंत्र बराबर कार्य करने लगता हैं। जिससे सूजन नहीं आती। आमाशय पर लगाने से पाचन अच्छा होता है। लीवर, पित्ताशय, गुर्दों, आंतों पर**

मेथी लगाने से संबंधित अंगों से विजातीय तत्व दूर होने लगते हैं और वे सारे अंग अपनी क्षमतानुसार कार्य करने लगते हैं।

शरीर के जिस स्थान पर बाल हो और टेप से मेथी दानों का स्पर्श संभव न हों वहाँ मेथी का लेप कर उपचार किया जा सकता है। **आग से जलने पर दानेदार मेथी को पानी में पीस कर लेप करने से जलन दूर होती है, फफोले नहीं पड़ते। मेथी का सिर पर लेप करने से बाल नहीं गिरते तथा गंजों के बाल आने लगते हैं।** बाल अपने प्राकृतिक रंग में मुलायम बने रहते हैं। बालों की लम्बाई बढ़ती है। ताजा पत्तियों का पेस्ट रोज नहाने से पूर्व चेहरे पर लेप करने से चेहरे का रुखापन, झुरियाँ, गर्मी से होने वाले फोड़े फुन्सियाँ आदि ठीक होते हैं।

पगथली के अंगूठों और अंगुलियों में मेथी लगाने से नाड़ी संस्थान संबंधी रोगों में शीघ्र राहत मिलती है।

मेथी कैसे और कितनी देर लगायें–

बाजार में अलग-अलग माप की चिपकाने वाली कागज की टेप मिलती है। आवश्यकतानुसार माप की टेप पर मेथीदाणा को चिपका दें। चारों तरफ थोड़ा स्थान खाली छोड़ दें ताकि टेप त्वचा पर आसानी से चिपक सकें। मेथी दाणों का स्पर्श तब तक शरीर पर रहने दें, जब तक उस स्थान पर किसी प्रकार की प्रतिकूलता अथवा सिर में भारीपन अनुभव न हों। मेथी अपना प्रभाव लगाने के तुरन्त बाद अनुभव कराने लग जाती है। मात्र तीन दिन के नियमित प्रयोग से उसके चमत्कारी प्रभावों का अनुभव होना प्रारम्भ होने लगता है।

उपसंहार–

सारांश यही है कि मेथी स्पर्श चिकित्सा सहज, सरल, सस्ती, प्रभावशाली, दुष्प्रभावों से रहित,वैज्ञानिक, पूर्ण स्वावलंबी एवं अहिंसक होती है, जिसका शरीर के रोगग्रस्त भाग पर शीघ्र प्रभाव पड़ता है। **मेथी दर्द नाशक एवं रक्तशोधक होती है। विजातीय तत्त्वों को दूर कर शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाती है। जिससे निष्क्रिय अंग सक्रिय एवं रोगग्रस्त भाग रोग मुक्तहोने लगते हैं। अतः भविष्य में दवाओं के बढ़ते दुष्प्रभावों का प्रभावशाली विकल्प मेथी स्पर्श चिकित्सा के समान दवाओं के शरीर पर स्पर्श से हो तो आश्चर्य नहीं?**

तेल चिकित्सा

शरीर में रक्त ताप एवं रोग प्रतिरोधक ऊर्जा का प्रमुख स्रोत होता है। अतः रक्त शुद्धि से शरीर की प्रतिकारात्मक शक्ति बढ़ती है। रक्त विकार सभी रोगों का प्रमुख कारण होता है। अतः यदि किसी सरल प्रभावशाली विधि द्वारा रक्त में से उसके विकारों को अलग कर दिया जाये तो अनेक रोगों से राहत मिल सकती हैं।

सूर्यमुखी तेल की विशेषताएँ–

चीनी पंच तत्त्व के सिद्धान्तानुसार रक्त का संबंध ताप ऊर्जा से होता है और उसमें विकार आने से रक्त-प्रवाह प्रभावित होने लगता है। रक्तचाप बराबर नहीं रहता। सूर्यमुखी तेल में विटामिन ए, डी तथा ई अधिक मात्रा में होने से इसके सेवन से रक्त में कोलस्ट्रोल जैसे विकार की वृद्धि नहीं होती। अतः आधुनिक चिकित्सक हृदय एवं रक्तचाप के रोगियों को घी के स्थान पर सूर्यमुखी तेल का भोजन में उपयोग करने का परामर्श देते हैं। आयुर्वेद के अनुसार सूर्यमुखी का तेल कफ एवं वात-नाशक होता है। त्वचा के विकार, खुजली, दाद एवं कोढ दूर करने में सहायक होता है। खाने में स्वादिष्ट व पचने में आसान होता है।

तेल में भी आजकल शुद्धता संदिग्ध होती है। तेल शुद्धिकरण के नाम पर प्रायः ऐसे रासायनिक पदार्थों का मिश्रण होता है जो स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक होते हैं। अतः बिना छानबीन सूर्यमुखी के तेल का खाने

में उपयोग भी हृदय रोगियों के लिये लाभदायक नहीं होता, अपितु कभी-कभी हानिकारक भी हो सकता है। बाह्य प्रयोग द्वारा भी सूर्यमुखी तेल का लाभ उपचार हेतु बिना किसी दुष्प्रभाव विशेष विधि द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

तेल गंडूस का प्रभाव -

मुंह में तेल भरकर घुमाने की प्रक्रिया को तेल गंडूस कहते हैं। सूर्यमुखी तेल में सूर्य की ऊर्जा के विशेष गुण होते हैं। जिस प्रकार चुम्बक लोहे को आकर्षित करता है, फिटकरी पानी से गंदगी अलग करती है, ठीक उसी प्रकार सूर्यमुखी तेल में रक्त के विकारों को रक्त से अलग करने की क्षमता होती है। एक चम्मच सूर्यमुखी तेल को मुँह में भरकर 15 से 20 मिनट अन्दर ही अन्दर घुमाने से चेहरे की समस्त मासपेशियां सक्रिय होने लगती है। रक्त भी सारे शरीर में लगभग 15 से 20 मिनट में परिभ्रमण का एक चक्र पूर्ण कर लेता है। चेहरे, जीभ और दाँतों का संबंध शरीर के सभी प्रमुख अंगों से सीधा होता है। अतः जब रक्त मुँह की नाड़ियों से होकर गुजरता है तो जिस प्रकार चुम्बक लोहे को खिंचता है उसी प्रकार सूर्यमुखी तेल अपने स्वभाव के कारण रक्त में से उपस्थित रोगाणुओं और विकारों को अपनी तरफ आकर्षित कर लेता है और रक्त-शुद्धि में सहयोग करता है। परिणामस्वरूप रक्त-विकार संबंधी सभी रोगों में लाभ होता है।

त्वचा संबंधी रोगों का मुख्य कारण प्रायः रक्त में खराबी होता है। अतः उसमें भी इस प्रयोग से शीघ्र लाभ होता है। दांतों का संबंध शरीर में सभी हड्डियों से होता है। अतः तेल गंडूस से जोड़ों के दर्द में भी विशेष लाभ होता है। इस प्रक्रिया से थायराइड ग्रन्थि संबंधी रोग भी ठीक होते हैं, चेहरे की कान्ति बढ़ती है, स्वर सुधरता है, त्वचा की शुष्कता दूर होती है, भोजन में रुचि तथा स्वादों के प्रति सजगता बढ़ती है। कण्ठशोध, होठों का फटना, दाँतों का हिलना एवं दाँतों संबंधी रोगों में भी तेल गंडूस से बहुत लाभ होता है। इस चिकित्सा में रोग के निदान की आवश्यकता नहीं होती। स्वस्थ व्यक्ति भी यदि इस प्रयोग को नियमित करें तो सभी प्रकार के रक्त- विकार संबंधी रोगों के होने की संभावनाएँ कम हो जाती हैं। अतः स्वस्थ और रोगी दोनों तेल गंडूस का लाभ उठा सकते हैं। **उच्च अथवा निम्न रक्तचाप, हृदय रोग, सफेद दाग, सोरायसिस, दाद, खुजली आदि चर्म-रोगों एवं रक्त-विकार संबंधी अन्य रोगियों को यह प्रक्रिया कुछ सप्ताह तक दिन में दो से तीन बार करनी चाहिये। कुछ ही दिनों के प्रयोग से चमत्कारी परिणाम सामने आने लग जाते हैं।**

15 से 20 मिनट उपयोग के पश्चात् तेल विकृत हो जाता है। अतः उसे ऐसे स्थान में थूकना चाहिए जिसे तुरन्त स्वच्छ किया जा सके। तेल को जहाँ भी डालें उस स्थान को एकदम साफ कर लें। अन्यथा उस तेल की गंध से जीव जन्तु उसका सेवन कर मर सकते हैं। साथ ही जीभ और दांतों को भी पानी से स्वच्छ कर लेना चाहिये।

रूस के डॉक्टर कराच ने भी 1991 में न्यूयार्क में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय कैंसर अधिवेशन में सूर्यमुखी तेल के दिन में 2-3 बार गंडूस द्वारा मात्र तीन से छः मास के अन्दर रक्तकैंसर जैसे रोग के उपचार की पुष्टि की है। उन्होंने सैकड़ों सभी प्रकार के रक्तसम्बन्धित रोगियों पर प्रयोग करने के पश्चात् अनुभव किया कि उपर्युक्त विधि से तेल गंडूस द्वारा सिरदर्द, दमा, रक्तचाप, पक्षाघात, हृदयाघात, गुर्दे एवं आतों के रोगों में, दाँत, रक्त एवं त्वचा संबंधी रोगों में चंद दिनों के प्रयोग से ही अच्छे चमत्कारी परिणाम आते हैं।

चैतन्य चिकित्सा

स्वास्थ्य हेतु सही श्वसन आवश्यक–

यदि किसी व्यक्ति को चन्द मिनटों के लिए लाखों रुपयों का प्रलोभन दे कर श्वास रोकने अथवा बन्द करने का अनुरोध करें तो भी शायद ही कोई अभागा अथवा मूर्ख व्यक्ति हमारी बात को स्वीकारेगा ? श्वास बंद होते ही व्यक्ति की मृत्यु होती है तथा मृत्यु के पश्चात् प्राप्त उस अपार धन राशि का स्वयं के लिए क्या उपयोग ?ऐसी अमूल्य श्वास ऊर्जा हमें जीवित अवस्था में प्रकृति से अनवरत बिना कुछ मूल्य चुकाये प्रतिक्षण प्राप्त होती है।

श्वास का चेतना से सीधा संबंध–

परन्तु प्रायः हम हमारी अमूल्य श्वास का पूर्ण सजगता के साथ सदुपयोग नहीं करते। हमारी चेतना अथवा प्राण का श्वास के साथ घनिष्ठ संबंध होता है। दोनों का एक-दूसरे के बिना अस्तित्व संभव नहीं होता। जिस प्रकार बिजली की ऊर्जा को आवश्यकतानुसार रूपान्तरित कर एयर कंडीशनर, कूलर, फ्रीज, पंखे आदि ठण्डक प्रदान कराने वाले और हीटर, ओवन, गीजर आदि गर्मी पैदा करने वाले तथा ट्यूब, बल्ब आदि प्रकाश फैलाने वाले एवं वाहन आदि गति करने वाले उपकरणों का उपयोग किया जा सकता है। ठीक उसी प्रकार शरीर में चेतना आंखों के सहयोग से देखने, कानों के सहयोग से सुनने, मन से मनन-चिंतन, नाक के सहयोग से सूंघने, मुँह एवं जीभ के सहयोग से बोलने तथा आहार ग्रहण करने इत्यादि की क्षमता प्राप्त कर लेती है।

एकाग्रता से ऊर्जा बढ़ती हैं–

हमारी अधिकांश प्रवृत्तियाँ पाँचों इन्द्रियों और मन के माध्यम से संचालित होती है। मन की चेतना सभी प्रवृत्तियों में निर्णायक भूमिका निभाती है। पाँचों इन्द्रियों और मन के सकारात्मक तालमेल एवं सदुपयोग से हम स्वस्थ और संतुलित होते हैं जबकि उनके नकारात्मक एवं दुरुपयोग से हम असंतुलित एवं रोगी होते हैं। आत्मार्थी साधक इन्द्रियों का आलम्बन मन से हटाने हेतु पर्वतों, गुफाओं अथवा एकान्त स्थान का साधना हेतु चयन करते हैं।

अतः यदि किसी विधि द्वारा शरीर के किसी भाग पर मन को केन्द्रित कर दिया जाये तो उस स्थान पर प्राण-ऊर्जा को बढ़ाया जा सकता है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिये प्राण अथवा चैतन्य ऊर्जा से अच्छा, प्रभावशाली और सशक्त कोई अन्य विकल्प प्रायः नहीं होता।

परन्तु मन को एकाग्र करना बहुत कठिन होता है और उस हेतु दीर्घकालीन ध्यान-साधना का अभ्यास आवश्यक होता है, जो जनसाधारण के लिये प्रायः संभव नहीं होता। अतः यदि हम आँख से देखना, मुँह से खाना और बोलना बंद कर दें तथा शांत एकान्त स्थान पर चले जायें तो आवाज न आने से कान और गंध परिवर्तन न होने से घ्राणेन्द्रिय को आराम मिल जाता है। ऐसे समय हम मन को जिस स्थान पर एकाग्र करना चाहें, सरलता से कर सकते हैं। हम भलिभांति जानते हैं कि जब सूर्य की किरणें किसी कांच के लेन्स के अन्दर से निकाली जाती है तो किरणें एकाग्र होकर अपना प्रभाव दिखाने लगती है। जिस स्थान पर वे किरणें फेंकी जाती है, वहाँ इतनी गर्मी पैदा होने लगती है कि कुछ ही देर में वहाँ पड़ा कागज, कपड़ा अथवा अन्य ज्वलनशील पदार्थ जलने लगता है। जो कार्य सूर्य की असंख्य किरणें अलग-अलग नहीं कर सकती है, वही कार्य उनको एकाग्र करने से सहज हो जाता है। कहने का तात्पर्य यही है कि एकाग्रता से ऊर्जा की ताकत बढ़ जाती है। जिस प्रकार राष्ट्र की विकटतम समस्या के समाधान हेतु जब सर्वोच्य नेता का ध्यान आकर्षित हो जाता है, वे रुचि लेने लगते हैं तथा उन

समस्याओं को प्राथमिकता से सुलझाने का प्रयास करते हैं तो उस समस्या का अवश्य समाधान हो जाता है। ठीक उसी प्रकार जब रोगग्रस्त भाग से चेतना का सीधा सम्पर्क हो जाता है, मन के दूसरे आलम्बन समाप्त हो जाते हैं तो प्राण-ऊर्जा का प्रवाह उस भाग में बढ़ने लगता है। जिससे शरीर के उस रोग-ग्रस्त भाग की क्षीण कार्य क्षमता पुनः बढ़ने लगती है। वहाँ से विजातीय तत्त्व एवं विकार दूर होने लगते हैं। फलतः रोगग्रस्त भाग रोग-मुक्तहोने लगता है।

कैसे करें उपचार ?-

प्रातः काल हम इतना जल्दी उठें कि आसपास का वातावरण पूर्णतया शांत हों तो हमारा घर ही मन की एकाग्रता के लिये शांत और एकान्त स्थान बन सकता है। ऐसे समय घर के शुद्ध वातावरण में स्थिर आसन बैठ आँख बंद कर दर्द वाले भाग को थपथपायें, उस भाग का संकुचन और फैलाव करें या उस भाग पर सहनीय दबाव दें तो हमारा ध्यान उस स्थान पर केन्द्रित होने लग जाता है। परिणामस्वरूप उस स्थान पर प्राण ऊर्जा अधिक मात्रा में प्रवाहित होने लगती है। जिससे विजातीय विकार दूर होने लगते हैं और कमजोर भाग सशक्त एवं रोगग्रस्त भाग रोग-मुक्तहोने लगता है। मांसपेशियों में हलन-चलन होने से सक्रियता आने लगती है। जिस प्रकार जो स्प्रींग क्रियाशील होती है, उसमें जंग लगने की संभावनाएं कम रहती है, ठीक उसी प्रकार रोग वाले भाग पर मन को एकाग्र करके गहरा श्वास लेने तथा तेजी से श्वास निकालने अथवा जोर से मन ही मन बिना आवाज किए हँसने से रोगग्रस्त भाग की मांसपेशियों में हलन-चलन होने तथा प्राण-ऊर्जा का प्रवाह बढ़ने से उन पर लम्बे समय से जमें विकार दूर होने लगते हैं, जिससे तुरंत स्वास्थ्य लाभ की प्रक्रिया प्रारम्भ होने लग जाती है। मृत कोशिकाएँ पुर्नजीवित होने लगती है। जिस प्रकार मालिक के जागते ही चोर भाग जाता है, ठीक उसी प्रकार रोगग्रस्त भाग पर ध्यान करने से वहाँ से रोग के कारण दूर होने लगते हैं। डायाफ्राम के आसपास हृदय, फेंफड़ों, तिल्ली, आमाशय आदि के रोगों में यह चिकित्सा विशेष लाभकारी होती है। हृदय की शल्य चिकित्सा की मानसिकता वाले रोगी मात्र 10-15 रोज इस प्रक्रिया के चमत्कारी परिणामों का अनुभव कर सकते हैं एवं नियमित अभ्यास से अपने आपको शल्य चिकित्सा से बचा सकते हैं।

प्राण-ऊर्जा से ज्यादा प्रभावशाली रोग निवारक शक्ति बाजार में उपलब्ध दवाईयों में प्रायः मिलना असंभव होता है। परन्तु जब रोगी की चेतना का दर्द अथवा कमजोर भाग से सीधा सम्पर्क हो जाता है तो प्राण ऊर्जा का प्रवाह आवश्यकतानुसार होने लगता है जिससे उपचार प्रभावशाली हो जाता है। अंतःस्रावी ग्रन्थियाँ आवश्यकतानुसार उस भाग में अपने स्राव के रूप में मदद भिजवाने लगती है, जिससे व्यक्ति रोग-मुक्त होने लगता है।

स्वास्थ्य हेतु पैरों का बराबर होना आवश्यक

हम प्रतिदिन हजारों कदम चलते हैं। यदि हमारे दोनों पैर बराबर न हुए, एक पैर बड़ा और दूसरा छोटा हुआ तो निश्चित रूप से एक पैर पर अधिक दबाव पड़ता है। फलतः हमारे शरीर का दाहिना-बायाँ संतुलन बिगड़ने लगता है। शरीर की चाल बदल जाती है और बाह्य शारीरिक विकास असंतुलित होने लगता है। उठने, बैठने, खड़े रहने, सोने अथवा चलने फिरने की प्रक्रियाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। शरीर के किसी भाग पर अनावश्यक दबाव लगातार पड़ते रहने से वह भाग रोग ग्रस्त हो सकता है। अधिकांश पैरों, कमर एवं गर्दन के

रोगों का प्रारम्भ इसी कारण होता है। फिर चाहे उसे साइटिका, स्लीप डिस्क, घुटने का दर्द, स्पोन्डोलायसिस आदि किसी भी नाम से क्यों न पुकारा जाता हो? जैसे ही दोनों पैरों को बराबर कर दिया जाता है, ऐसे अनेक पुराने असाध्य रोगों का उपचार सहज एवं प्रभावशाली होने लगता है।

पैर बड़े-छोटे क्यों होते हैं?

हमारा शरीर दाहिने एवं बायें बाह्य दृष्टि से लगभग एक जैसा लगता है। परन्तु उठने-बैठने-खड़े रहने, सोने अथवा चलते फिरते समय प्राय: हम अपने बायें और दाहिने भाग पर बराबर वजन नहीं देते। जैसे खड़े रहते समय किसी एक तरफ थोड़ा झुक जाते हैं। बैठते समय सीधे नहीं बैठते। सोते समय हमारे पैर सीधे और बराबर नहीं रहते। स्वत: किसी एक पैर को दूसरे पैर की सहायता और सहयोग लेना पड़ता है। फलत: एक पैर के ऊपर दूसरा पैर स्वत: चला जाता है। ऐसा क्यों होता है? अधिकांश व्यक्ति किसी भी एक आसन में लम्बे समय तक स्थिरता पूर्वक क्यों नहीं बैठ सकते? इसका मतलब उनका शरीर असंतुलित होता है। उनके पूर्ण नियंत्रण में नहीं होता है। हम सीधे क्यों नहीं सो सकते? बार-बार करवटें क्यों बदलनी पड़ती हैं? निद्रा में पैर के ऊपर पैर क्यों चला जाता हैं?

पैर को संतुलित करने की विधि -

रोगी को सीधा सुलावें। दोनों पैरों के टखने को मिलाकर देखें कि दोनों के केन्द्र बराबर हैं या नहीं। टखनों के साथ-साथ पैर के दोनों पैरों के अंगूठों की ऊचाई जमीन से बराबर हों तो दोनों पैरों की लम्बाई बराबर होती है अन्यथा जो अंगूठें का ऊपरी भाग नीचा होता है वह पैर दूसरे पैर से छोटा होता है। छोटे पैर के अंगूठे को धीरे-धीरे तब तक खींचे जब तक दोनों पैर बराबर न हो जायें। चन्द दिनों तक नियमित यह प्रक्रिया करने से दोनों पैर बराबर रहने लगते हैं।

बहुत बार किसी भी कारण से संबंधित पैर के अंगूठे को खींचना संभव नहीं होता। ऐसी परिस्थितियों में निम्न विधि द्वारा दोनों पैरों को बराबर किया जा सकता है।

रोगी को सीधा सुलावें, पूर्व विधि के अनुसार पता लगायें कि कौनसा पैर छोटा या बड़ा है। जिस छोटे पैर को बराबर करना हो, उस घुटने को पेट के जितना नजदीक बिना किसी दर्द ले जा सकते हैं, ले जायें। एक हाथ से उस पैर के घुटने पर हल्का सहनीय दबाव रखें। अब यदि वह पैर छोटा हो और उसे बड़ा करना हो तो उस छोटे पैर की पिण्डली को दूसरे हाथ से पकड़ दूसरे घुटनें की तरफ मोड़ें। ऐसा करने से छोटा पैर बड़ा हो जाता है। दर्द, फ्रेक्चर, पूर्व में की गई शल्य चिकित्सा आदि किसी कारण वश यदि छोटे पैर को मोड़ना संभव न हो तो बड़े पैर को छोटा करने के लिए बड़े पैर के घुटने को पेट के पास जितना ले जा सकते हैं, ले जावें। उसके पश्चात् उस बड़े पैर की पिण्डली को एक हाथ से पकड़ उस पैर की पिण्डली को बाहर की तरफ जितना बिना किसी असुविधा मोड़ सकते हैं, मोड़ें। ऐसा करने से बड़ा पैर छोटा हो जाता है।

छोटे पैर को बड़ा करने की विधि

बड़े पैर को छोटा करने की विधि

पैरों को बराबर करना क्यों आवश्यक ?

जब तक दोनों पैरों को बराबर नहीं किया जाता कोई भी चिकित्सा पद्धति पूर्ण प्रभावशाली ढंग से कार्य नहीं कर सकती। जिस प्रकार फूटे हुए घड़े को भरने से पूर्व छिद्र बन्द करना आवश्यक होता है। बिना छिद्र बंद

किये, कितना ही पानी क्यों न डाले, घड़ा स्थायी रूप से भरा हुआ नहीं रह सकता। मोटर कार को चलाने से पूर्व उसके चक्कों में हवा का उचित दबाव आवश्यक होता है। गाड़ी बहुत ही अच्छी हो, चालक भी बहुत अनुभवी हो, परन्तु जैसे चक्कों में वायु का दबाव बराबर न हों, ऐसी गाड़ी में निर्विध्न यात्रा कर गन्तव्य स्थान पर पहुँचना संदिग्ध होता है। ठीक उसी प्रकार यदि दोनों पैर बराबर न हों तो प्रातःकालीन भ्रमण जैसी अच्छी प्रवृति भी लाभ के स्थान पर कभी-कभी हानिकारक हो सकती है। जिस प्रकार खेती में बीज बोने से पूर्व खेत की सफाई एवं उस पर हल जोतना तथा खाद देना आवश्यक होता है। ठीक उसी प्रकार उपचार से पूर्व दोनों पैरों को बराबर करने से उपचार प्रभावशाली और स्थायी हो जाता है। कभी-कभी तो असंतुलन दूर होते ही रोगी को तत्काल जो राहत मिलती है वह अच्छी से अच्छी दवा से भी ज्यादा प्रभावशाली होती है। स्वस्थ अवस्था में भी नियमित निरीक्षण कर दोनों पैरों को बराबर रखने से रोग होने की संभावना कम हो जाती है।

स्वास्थ्यरक्षक व्यायाम 'स्वायसो'

स्वायसो क्या है?

स्वायसो एक अत्यन्त सरल एवं अल्प समय में किया जा सकने वाला व्यायाम है। स्वायसो का प्रारम्भ चीन में कुछ दशक पूर्व ही हुआ। इसको बच्चे, युवक, महिलाएँ एवं वृद्ध सभी कर सकते हैं। इसमें किसी प्रशिक्षक की भी आवश्यकता नहीं होती है। बहुत साधारण होते हुए भी सैंकड़ों बीमारियों में यह अत्यधिक प्रभावशाली है। चीन एवं जापान में हजारों लोग इसके द्वारा असाध्य रोगों से मुक्ति पा रहे हैं। इसी कारण यह पद्धति चीन, जापान, हांगकांग, दक्षिण-पूर्व एशिया, अमेरिका, कनाडा, भारत आदि राष्ट्रों में दिनों-दिन लोकप्रिय होती जा रही है।

स्वायसो व्यायाम हमारे शरीर में एकत्र हुए अवरोध, तनाव व ऐंठन को समाप्त कर देता है जिससे रोगों से बचना संभव होता है, तथा रोग से मुक्ति मिलती है। **इसके प्रणेता एवं प्रचारक मासाओ हयाशिमा ने चन्द वर्षों पूर्व जानबूझकर अपने शरीर में कैन्सर रोग उत्पन्न किया तथा स्वायसो कसरत द्वारा उसे ठीक भी कर दिया।** स्वायसो व्यायाम तेओईस्ट के सिद्धान्तों पर आधारित है। उनके अनुसार पश्चिमी दवाइयों के 170 सालों और चीनी दवाइयों के 1000 सालों से ज्यादा इतिहास में ऐसी कोई खबर नहीं है कि उन्होंने किसी पागल को ठीक किया हो।

स्वायसो कैसे करें?

स्वाय शब्द का चीनी अर्थ होता है झूलना या दूर फेंकना। इस प्रकार स्वायसो का अर्थ होता है बाहों को आगे व पीछे झुलाना। स्वायसो द्वारा शरीर के विकारों को बाहर झटक दिया जाता है। ये विकार ही शरीर में ब्लोक्स व तनाव के कारण होते हैं। इसका प्राथमिक उद्देश्य शरीर की विकृत ऊर्जा को बाहर निकालकर शरीर में शुद्ध ऊर्जा का संचार करना होता है। इस प्रकार यह व्यायाम शरीर में प्राकृतिक स्थिति पैदा कर देता है। यह चीन में प्रचलित सर्वाधिक लोकप्रिय व्यायाम है जो अनेक रोगों में रामबाण सिद्ध हो रहा है।

स्वायसो व्यायाम कैसे करें?

1. सर्वप्रथम पैरों को सीधा रखते हुए जमीन पर तनकर खड़े हो जाएं। बाँहों को धरती के समानान्तर फैलाएं एवं अंगुलियों को इस प्रकार रखें जैसे कि जमीन को पकड़ रखा हो।

2. दोनों बाँहों को एक साथ आगे व पीछें झुलाएँ। बाँहों को पीछे की ओर धकेलते समय ही शक्ति का प्रयोग करें व आगे उन्हें स्वयं आने दें। कुहनियाँ सीधी रखें, हथेलियाँ पीछे की ओर मुड़ी हुई हों। आँखें ठीक सामने की तरफ देख रही हों। मस्तिष्क को बिल्कुल खाली छोड़ दें व तसल्ली से गिनती करते जाएं।

3. पहली बार स्वायसो व्यायाम दो सौ अथवा तीन सौ से प्रारम्भ करें व धीरे-धीरे संख्या बढ़ाते जाएं। अन्ततः अपनी क्षमता के अनुसार एक हजार या दो हजार तक पहुँचें।

सिद्धान्त-

ऊपर भरा व निचला खाली को ऊपर खाली व निचला भरा में बदलना

मानव शरीर के महत्त्वपूर्ण अंग शरीर के ऊपरी आधे भाग में होते हैं, जैसे मस्तिष्क, हृदय, फेंफड़े आदि। निचले आधे भाग में कूल्हें व टागें आदि होती हैं। आज की तनावयुक्त जीवन शैली एवं अन्य कारणों के परिणामस्वरूप ऊपरी भाग को अत्यधिक कार्यरत रहना पड़ता है तथा हम अपनी अधिकांश शक्ति एवं ध्यान इसी ऊपरी भाग पर लगाते हैं। इस प्रकार हमारा शरीर सदैव ऊपर से भरा व निचला खाली जैसी अवस्था में रहता है। जैसे अगर हम सात आठ घंटे लगातार पढ़ते रहेंगे तो सिर भारी हो जाएगा, आँखे लाल हो जाएगी और आगे पढ़ते रहना मुश्किल हो जाएगा। इस अवस्था हो हम सिर का असाधारण रूप से भारी हो जाना कह सकते हैं। ऐसी स्थिति में हम थक जाते हैं तथा कोई भी रोग लग सकता है।

ऊपर भरा से तात्पर्य न केवल सिर से है, बल्कि पूरे ऊपरी आधे शरीर से होता है। जब ऊपर भरा व निचला खाली होता है तो थकावट बढ़ती जाती है और विभिन्न रोग लग जाते हैं, क्योंकि विकृत ऊर्जा भी शरीर में बढ़ती जाती है।

'स्वायसो' व्यायाम का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य यही होता है कि यह ऊपर-भरा व निचला खाली वाली अवस्था को उलट देती है इसके द्वारा विकृत ऊर्जा बाहर निकल जाती है, शुद्ध ऊर्जा का संचरण होता है तथा शरीर के निचले अंगों में बने हुए अवरोध व तनाव बिखर जाते हैं। स्वायसो द्वारा जो 70 प्रतिशत ऊर्जा निचले भाग में एकत्र हो जाती है उसे ऊपरी भाग में भेजना है तथा सिर्फ 30 प्रतिशत ऊर्जा ही निचले अंगों में रखनी है।

स्वायसो करते समय ध्यान रखने हेतु आवश्यक मार्गदर्शन :-

1. अपनी कमर सीधी रखें। शरीर के ऊपरी भाग को पूर्णतः शिथिल हो जाने दें। कन्धों में तनाव नहीं लाएँ तथा बाँहों को घड़ी के पेण्डुलम की तरह झूलने दें।
2. शरीर के निचले भाग में गुरुत्वाकर्षण महसूस करें। तलवे पर मजबूती से खड़े रहें एवं पैरों में जूता-चप्पल नहीं पहनें। धरती को पकड़ने का प्रयास करें एवं अंगुलियों से जमीन की खुदाई करने का प्रयास करें। एडियों को जमीन पर इस प्रकार रखें जैसे कि वे भारी पत्थर हों।
3. ऐसा सोचें की आपका सिर किसी रस्से द्वारा लटक रहा है एवं सारा शरीर ढ़ीला होकर झूल रहा है, इस प्रकार कंधों का शिथिलीकरण हो जाएगा।
4. जबड़ों को ढ़ीला छोड़ दें, मुँह बन्द रखें, परन्तु दाँतों को नहीं भीचें।
5. मस्तिष्क को निश्चेष्ट रखें एवं अपने विचारों को भटकने नहीं दे। अपने शरीर के ऊपरी भाग को पूर्णतः खाली हो जाने दें।
6. पहिए की धुरी की तरह अपने नाभि-प्रदेश को व्यायाम के लिए केन्द्र बिन्दु मानें।
7. कुहनियों को कंधे से अधिक ऊँचाई तक नहीं झुलाएँ।

8. अपनी बांहें ढ़ीली रखे। अपनी बांहों को नाव के दो चप्पू समझें एवं इस प्रकार झुलाएं जैसे हवा को धकेल रहे हों।
9. अपना ध्यान नाभि के केन्द्र बिन्दु पर स्थिर करें। जांघों के भीतरी हिस्से को तनाव मुक्त रखें। गुदा को सिकोड़ने का प्रयास करें।
10. जब आप बाँहें झुला रहे हों तो हथेलियों को नीचे की ओर रखें।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखकर स्वायसो करेंगे तो नीचे-सात, ऊपर-तीन की अवस्था प्राप्त हो जाएगी अर्थात् पहले जो ऊपरी हिस्से में सात हिस्से भार था वह निचले हिस्से में उतर जाएगा एवं ऊपरी हिस्सा हल्का हो जाएगा तथा इसी अनुपात में शक्तिशाली बनता जाएगा। **स्वायसो करते समय कल्पना करें कि आप एक पुराने वृक्ष हैं, जिसकी जड़ें जमीन में काफी गहरी पैठी हुई हैं। ऐसा करने से हमारे तलवे में जो मेरेडियन्स की ऊर्जा है वह जागृत होकर ऊपर की ओर बढ़ने लगेगी तथा मांसपेशियों, त्वचा, हड्डियों व जोड़ों को शक्ति मिलने लगेगी।**

हालांकि स्वायसो बाहों को झुलाने की कसरत है, परन्तु इसमें पैरों का अधिक योगदान होता है व नाभि प्रदेश का महत्त्व होता है। स्वायसो में पैर व नाभि प्रदेश का कार्य बाँहों की अपेक्षा अधिक जरुरी है। नाभि प्रदेश से बाँहें ऊपर उठेंगी तथा नाभि प्रदेश का अवलम्बन पैर होंगे। इसी प्रकार स्वायसो में पैर पर जोर देने को कहा जाता है, इसका कारण यह है कि हमारे तलवे में जो किडनी, लीवर एवं हृदय आदि के एक्यूप्रेशर के जो प्रतिवेदन बिन्दु हैं, वे दब जाते हैं एवं जागृत हो जाते हैं।

स्वायसो के परिणाम-

उच्च तथा निम्न रक्तचाप भी केवल स्वायसो करते रहने से मिट जाता है। हमारे शरीर में असंख्य धमनियाँ व शिराएँ हैं जिनमें रक्त प्रवाह होता रहता है। कई शिराएँ तो इतनी सूक्ष्म होती है कि इनकी मोटाई सूई की नोंक के तीन सौ वे भाग के बराबर होती है। चूँकि रक्त का घनत्व पानी की अपेक्षा अधिक होता है। अतः जब हम किसी अंग से काम नहीं लेते हैं या कम काम लेते हैं तो वहाँ रक्त जमने व थक्के बनने की संभावना रहती है और यही रक्तचाप का कारण बन जाता है। स्वायसो द्वारा हाथ-पैर गतिमान बने रहते हैं एवं रक्तचाप सही बना रहता है। जब स्वायसो नियमित रूप से किया जाएगा तो शरीर में कुछ परिवर्तन होने लगेंगे। पसीने एवं तापक्रम में वृद्धि होगी। श्लेष्मा बढ़ेगी तथा तन्द्रा छाने लगेगी। ये लक्षण स्पष्ट करते हैं कि शरीर से अशुद्ध ऊर्जा बाहर निकल रही है और शरीर मजबूत बनता जा रहा है, बीमारियाँ दूर हो रही हैं। स्वायसो में जब हम अपनी बाँहों को चलाते हैं तो कमर, छाती व पेट की माँसपेशियों में खिंचाव आता है, नाड़ी संचार सही हो जाता है और मेरेडियन में ऊर्जा का प्रवाह सही हो जाता है।

मासाओ हवाशिमा ने स्वायसो से निम्नलिखित रोगों को ठीक करने में संतोषजनक परिणाम प्राप्त किए हैं- (1) विभिन्न प्रकार के कैंसर, (2) उच्च एवं निम्न रक्तचाप, (3) हृदय रोग, (4) गुर्दे के रोग, (5) आँखों के रोग, (6) पाचन संबंधी रोग, (7) लीवर के रोग, (8) गठिया एवं (9) स्नायु रोग।

स्वायसो पद्धति अपनाकर पागलपन एवं मंद बुद्धि वालों के उपचार में सफलता प्राप्त की जा सकती है।